Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

मनुष्य और समाज

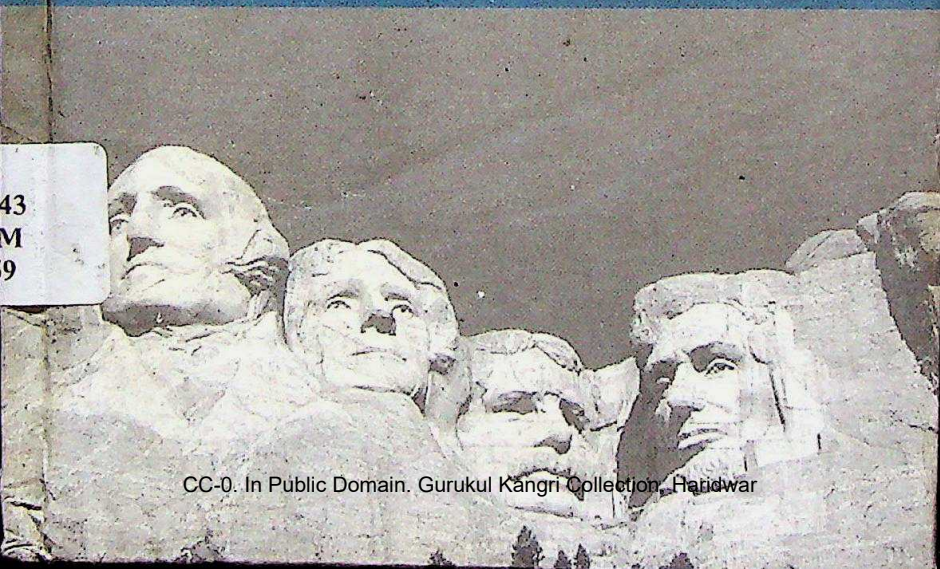

43
M
39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167959

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: arshsahityn.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

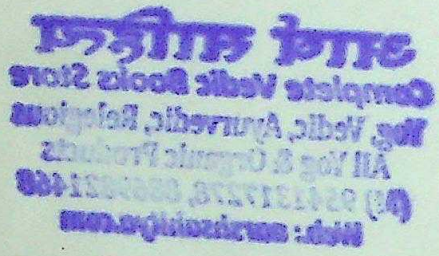

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य और समाज

एक ही परिस्थिति में कुछ लोग रुग्ण हो जाते हैं और बहुतों को कुछ नहीं होता। कभी-कभी असाध्य कष्ट से व्यक्ति पीड़ित हो जाता है। ऐसे रोगों को लोग पिछले जन्म के कर्मों का फल कह देते हैं, क्योंकि इस जन्म में उन्हें अपने कर्मों में कुछ ऐसा दिखाई नहीं देता, जिसका फल ऐसे कष्ट के रूप में मिले। ऐसा क्यों?

इसका उत्तर कोई चिकित्सक अथवा डॉक्टर नहीं दे सकता, केवल 'दर्शन' ही दे सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

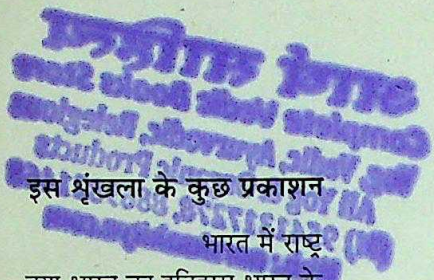

इस शृंखला के कुछ प्रकाशन

भारत में राष्ट्र

क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है ?

भाग्य चक्र

भाव और भावना

राष्ट्र राज्य और संविधान

वीर पूजा

धर्मवीर हकीकत राय

अन्तिम यात्रा (डॉ. मुखर्जी की)

हमारा उद्देश्य—विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली–110 005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य और समाज

गुरुदत्त

Central Library
167959
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
081
167959

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110 005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© हिन्दी साहित्य सदन

R
०८९·९१४३
GUR-M

मूल्य : 45.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 3553624 ◆ फैक्स : 91-11-5412417
E-mail : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2002

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य और समाज

मनुष्य क्या है? कैसे बना? इस सृष्टि पर कैसे अवतरित हुआ और क्यों हुआ? ये प्रश्न और ऐसे बीसियों प्रश्न एक बुद्धिशील प्राणी के मन में उठा करते हैं। प्राय: साधारण मनुष्य तो यह सोचकर शांत हो जाता है कि जो है सो है, हम क्यों इस सोच-विचार के पचड़े में पड़ें? वह घर-गृहस्थी के झंझटों में इतना व्यस्त रहता है कि सोचने की उसमें क्षमता ही नहीं रहती।

परंतु ऐसे मनुष्य भी सोचने पर विवश हो जाते हैं जब जीवन में कष्ट आने लगते हैं और उन कष्टों के निवारण का मार्ग नहीं सूझता। वह फिर सोचने पर विवश हो जाता है कि आखिर ये कष्ट क्यों आते हैं? मैंने ऐसा कौन-सा बुरा कार्य किया कि ये कष्ट मुझ पर आए हैं?

एक व्यक्ति को अधरंग हो जाता है और वह सर्वथा पंगु बन चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है तथा कभी-कभी बोलने और अपने दैनिक क्रिया-कलाप भी संपन्न नहीं कर पाता। ऐसे कष्ट को कुछ लोग पिछले जन्म के कर्मों का फल कह देते हैं क्योंकि इस जीवन में उन्हें अपने कर्मों में कुछ ऐसा नहीं दिखाई देता जिसका फल उन्हें इस बीमारी के रूप में मिले।

एक ही परिस्थिति में कुछ लोग रुग्ण हो जाते हैं तो बहुतों को कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों? इसका उत्तर उसे कोई डॉक्टर, चिकित्सक नहीं दे सकता। केवल दर्शन ही दे सकता है। वह उसे जन्म-मरण का रहस्य समझाता है और फिर उसे उसी के अनुरूप कर्म करने की प्रेरणा देता है।

दर्शन बताता है कि मनुष्य में तीन तत्व विद्यमान हैं, परमात्मा,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा तथा प्रकृति। इन तीनों के संयोग का परिणाम प्राणी है।

नास्तिक लोग परमात्मा को नहीं मानते जिसका परिणाम ही यह है कि आज भौतिकवाद का बोलबाला है और सब प्रकार के सुख के साधन होते हुए भी जगत् में शांति नहीं है, वाद-विवाद है, लड़ाई-झगड़े हैं, धोखा-धड़ी है, भ्रष्टाचार है, अनाचार है, दुराचार है, व्यभिचार है और पता नहीं क्या-क्या है।

आस्तिक विचार ही मुनष्य को कष्टों से बचा सकता है। यही कारण है कि आज विश्व के विचारशील लोग भारत के दर्शन में रुचि लेने लगे हैं। उन्हें शांति का मार्ग भारतीय दर्शन में ही दिखाई देता है।

इसके लिए स्वार्थ त्याग की आवश्यकता है जिसके लिए लोभी मन (पाँच विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार—से युक्त) तैयार होता नहीं, परंतु यदि मानसिक शांति चाहिए तो भारतीय विचार को उन्हें स्वीकार करना होगा। अन्य कोई मार्ग नहीं।

इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने मनुष्य, आत्मा-परमात्मा, कर्म तथा धर्म इन विषयों पर संक्षेप में प्रकाश डालने का यत्न किया है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

—प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

मनुष्य

मनुष्य क्या है? वह कैसे इस सृष्टि पर उत्पन्न हुआ और उसका क्रियाकलाप क्या है? वह किस कारणवश कार्य करता है; कार्य करने के लिए उसने कौन-कौन-से साधन एकत्रित कर लिए हैं और क्यों कर रहा है? मनुष्य पर विचार करते ही ये सब और अनेकों अन्य प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं।

यह दर्शनशास्त्र का एक महान् प्रश्न है कि मनुष्य क्या है, इसमें क्या-क्या तत्त्व मिले हैं और फिर इसका प्रादुर्भाव इस पृथ्वी पर कैसे और क्यों हुआ है? सब देशों के दार्शनिकों ने इस प्रश्न पर विचार किया है। अनेक विचार प्रस्तुत किए गए हैं और फिर उन विचारों पर पुष्टि में अनेक युक्तियाँ उपस्थित की गई हैं। विचारों की पुष्टि के लिए प्रमाण भी एकत्रित करने का यत्न किया गया है।

भारत के प्राचीन वाङ्मय में भी जगत् और उसमें प्राणी-सृष्टि के प्रश्न पर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। अर्वाचीन भारतीय दार्शनिक तो प्रायः योरोप के दार्शनिकों की परिपाटी का अनुसरण ही करते हैं। अतः अर्वाचीन विचार का ज्ञान योरोपीय दार्शनिकों के अध्ययन से ही ज्ञात हो जाएगा। हम प्राचीन भारतीय विचार और अर्वाचीन योरोपीय विचार, दोनों दृष्टियों से मनुष्य प्राणी की मीमांसा प्रस्तुत करेंगे।

जगत् में सब पदार्थों को, सर्वप्रथम दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। जड़ पदार्थ और जीव पदार्थ। जड़ और जीव में भेद स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देता है। जड़ पदार्थ चेतनारहित होते हैं, जीव पदार्थ चेतनायुक्त होते हैं। चेतना के लक्षण किए गए हैं। न्याय-दर्शन में चेतना के लक्षण लिखे हैं—सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, ज्ञान और प्रयत्न।

न्याय-दर्शन में चेतना और आत्मा का अपरिहार्य संबंध माना है। इस कारण ये लक्षण आत्मा के भी माने गए हैं। लिखा है—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।[1]

वैशेषिक दर्शन में भी लिखा है—

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि॥[2]

इच्छा (पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा), द्वेष (दुःखादि की अनिच्छा अर्थात् उनसे वैर), प्रयत्न (सुख-प्राप्ति और दुःख निवारण के लिए यत्न करना), सुख और दुःख (का अनुभव), ज्ञान अर्थात् दोनों में भेद जानना और विवेक, ये आत्मा के लक्षण हैं। वैशेषिक दर्शन में इन गुणों के अतिरिक्त प्राण, अपान, आँखें खोलना, बंद करना, अर्थात् इंद्रियों से कार्य लेना, मन अर्थात् संस्कारों का संचय करना इत्यादि लक्षण अधिक लिखे हैं।

ये सब गुण उनमें पाए जाते हैं, जिन पदार्थों में जीव रहता है अर्थात् जिनको जीवित पदार्थ कहते हैं।

वर्तमान विज्ञान ने भी जड़ पदार्थ तथा जीवधारियों में पृथकता का वर्णन किया है। प्राणीशास्त्र (Biology) में प्राण (living object) उनको माना है, जो (१) भोजन ग्रहण कर उसे अपने शरीर का अंग बना लेते हैं, (२) अपने समान संतान उत्पन्न कर सकते हैं, तथा (३) अपनी सुरक्षा में यत्नशील रहते हैं।

भारतीय दर्शनशास्त्र में और अर्वाचीन विज्ञान में जीवित पदार्थ के

---

1. न्याय-दर्शन 1-1-10
2. वैशेषिक दर्शन 3-2-4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षणों में परस्पर अंतर है। यहाँ हम दोनों द्वारा बताए लक्षणों में गुण-दोष न बताकर यही प्रकट करना चाहते हैं कि प्राचीन तथा अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान भी, जगत् के पदार्थों को दो श्रेणियों में विभक्त करते हैं। एक श्रेणी है जड़ पदार्थों की और दूसरी श्रेणी है जीवित पदार्थों की। जीवित पदार्थों के लक्षण ऊपर दोनों के अनुसार लिख दिए हैं।

यह देखा गया है कि जीवित पदार्थ ही अर्थात् एक प्राणी (living-body) ही प्राणी का निर्माण कर सकता है। जड़ पदार्थ से प्राणी की उत्पत्ति नहीं हो सकती। आधुनिक वैज्ञानिक जीवन के इस रहस्य को समझने का यत्न कर रहे हैं। इस रहस्य को समझकर वे जड़-पदार्थ से जीवधारी उत्पन्न करने का यत्न करना चाहते हैं। अभी तक वे इस रहस्य को जान नहीं सके और जड़ से चेतन की उत्पत्ति बिना जीवधारी की सहायता के नहीं कर सके।

वैज्ञानिक यह कर सकेंगे अथवा नहीं? कहना कठिन है। कुछ भी हो, भारतीय मत यह है कि जब शरीर का निर्माण वैसा किया जा सकेगा, जैसा एक जीवधारी रज और वीर्य के संयोग से कर सकता है, तब आत्मा उस शरीर में आकर निवास ग्रहण कर लेगा। आत्मा के वैसे शरीर में निवास करने पर ही जीव अर्थात् प्राणी की सृष्टि पूर्ण होगी। आधुनिक वैज्ञानिक एक प्राणी का निर्माण जड़ पदार्थ से नहीं कर सका। कारण यह है कि उस बीज का निर्माण करने में अभी तक वह अशक्त सिद्ध हुआ है, जैसा बीज प्राणी अपने जीवित शरीर से निर्माण करने की शक्ति रखता है।

भारतीय मतानुसार बीज का निर्माण आत्मा और परमात्मा की संयुक्त शक्ति के बिना नहीं हो सकता और ईश्वरीय विधान से इस पृथ्वी पर प्राणी की उत्पत्ति के लिए बीज का निर्माण रज और वीर्य के संयोग की प्रक्रिया से ही संभव है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक बीज (germ-cell) का निर्माण अपनी विधि से करना चाहते हैं। भारतीय मत है कि यदि वे ऐसा कर भी सके तो भी उसमें आत्मा के निवास के बिना वह बीज प्राणी नहीं बन सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शब्दों में, उसमें वे लक्षण उत्पन्न नहीं होंगे जो न्याय तथा वैशेषिक दर्शन में जीवधारी के वर्णन किए हैं अथवा जो आज का वैज्ञानिक अपने प्राणीशास्त्र में जीवित पदार्थ (living-body) के लक्षण बताता है।

कुछ लोग समझते हैं कि आत्मा तथा परमात्मा हो अथवा न हो, प्राणी का निर्माण प्रयोगशाला में संभव है और वे ऐसा करने में लीन हैं। इस विश्वास से वे नित्य नए परीक्षण कर रहे हैं।

जैसा कि हम लिख चुके हैं हमारा केवल इतना बताने से प्रयोजन है कि प्राणी (living-object) जड़ पदार्थ से भिन्न है और जड़ पदार्थ प्राणी में बदला नहीं जा सकता। दोनों भिन्न-भिन्न श्रेणी के पदार्थ हैं।

प्राणियों में भी अनेक श्रेणियाँ हैं। उन सब में वे गुण पाए जाते हैं जिनका उल्लेख न्याय, वैशेषिक अथवा आज का प्राणीशास्त्र (Biology) करता है। इस पर भी एक श्रेणी दूसरी श्रेणी से भिन्न है। मुख्य रूप में दो श्रेणियाँ हैं—स्थावर तथा जंगम। स्थावर वे हैं, जो एक स्थान पर स्थित रहते हैं। इनको वनस्पति (vegetable) जगत् कहते हैं। जंगम उनको कहते हैं जो एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते वरन् चलते-फिरते रहते हैं। इनको जंतु जगत् (animal kingdom) कहते हैं।

मनुष्य, प्राणी अर्थात् जीवित पदार्थ है। अतः यह जंतु (animal) है।

जंतुओं में भी अनेक प्रकार हैं। इनको जातियाँ कहते हैं। यूँ तो वनस्पतियों में भी जातियाँ हैं। जातियों का संबंध योनि अर्थात् उनके उद्गम स्थान से है। एक प्रकार की योनि में उसी प्रकार की योनि रखनेवाले जंतु उत्पन्न होते हैं। बंदर की योनि से बंदर और रीछ की योनि से रीछ ही उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार मनुष्य की योनि से मनुष्य ही उत्पन्न होता है।

आज के वैज्ञानिक न केवल यह कहते हैं कि जड़ से चेतन पदार्थ बने हैं वरन् उनका तो कहना है कि चेतन पदार्थ भी आरंभ में एक ही प्रकार के थे और धीरे-धीरे उनमें भेद होते-होते, आज उन जंतुओं में अनेक जातियाँ दिखाई देने लगी हैं। मनुष्य भी आदि जंतु (amoeba) की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संतान है।

आज के वैज्ञानिकों का यह कहना कि जड़ से ही चेतन निर्माण हुआ है, अभी कल्पना क्षेत्र की बात ही है। जड़वादी दार्शनिकों ने बहुत लंबी-लंबी कल्पना की उड़ानें लगाई हैं, परंतु ये अभी कल्पना की उड़ानमात्र ही हैं।

इसी प्रकार भारतीय अद्वैतवादियों का यह मत कि जगत् का आदि पदार्थ एक परमात्मा ही है, भी एक वाद (theory) मात्र है। यह अभी एक असिद्ध विचार है। जैसे जड़वादियों का यह कथन कि आदि पदार्थ केवल जड़ (matter) ही है, एक विचार मात्र ही है। ये दोनों वाद प्रमाण एवं युक्ति से सिद्ध नहीं किए जा सके। सत्य क्या है, कहना कठिन है, परंतु युक्ति यह मानती है कि प्रकृति और आत्मतत्त्व दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं और जहाँ दोनों में संयोग हुआ है, वहाँ जीवन (life) के लक्षण जैसे वैशेषिक तथा न्याय-दर्शन में वर्णन किए हैं, प्रकट हो जाते हैं।

भारतीय वाङ्मय में दो प्रकार के आत्म तत्त्व माने हैं। वेद में लिखा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥[1]

श्वेताश्वतर-उपनिषद् में भी लिखा है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥[2]

ऋग्वेद में आत्मा, परमात्मा को प्रकृति रूपी वृक्ष पर बैठे हुए बताया है। आत्मा उस वृक्ष (प्रकृति) के फल खाता (भोगता) है और परमात्मा केवल साक्षी मात्र है।

उपनिषद् में बताया है कि ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अज्ञ है। ईश्वर सर्व

---

1. ऋ० 1-164-20
2. श्वे० 1-9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थ है और जीव असमर्थ है। ये दोनों अजन्मा अर्थात् अनादि हैं। एक अजन्मा प्रकृति है। वह प्रकृति जीव के लिए भोग्य सामग्री है। विश्वरूप आत्मा (परमात्मा) तो अनन्ता और अकर्ता है। जब कोई इन तीनों को ब्रह्म (महान्) मानता है, वह (ज्ञानवान्) हो जाता है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शास्त्र मानता है कि एक प्राणी में तीन तत्त्व विद्यमान होते हैं। प्रकृति (matter), जीव और परमात्मा। परमात्मा तो सर्वव्यापक है, परंतु आत्मा एक प्राणी में ही व्यक्त होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक ऐसा नहीं मानता। वास्तव में यह (प्राणी) विज्ञान का विषय भी नहीं है। विज्ञान तो अभी जड़ पदार्थों के विश्लेषण में लगा है। इसकी पहुँच चेतना के क्षेत्र तक नहीं हुई। पहुँच हो भी जाए तो भी यह दर्शन को पार नहीं कर सकता।

एक अंग्रेजी लेखक विल्ल ड्यूरांट (Will Durant) अपनी पुस्तक The story of Philosophy के प्राक्कथन में लिखते हैं—Science gives us knowledge but only philosophy can give us wisdom.

उनका कहना है कि सायंस पदार्थों का ज्ञान करा सकती है, परंतु बुद्धि की प्राप्ति तो दर्शन द्वारा ही हो सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि वैज्ञानिक-परीक्षण वस्तुओं का ज्ञान करा सकते हैं, परंतु उसमें क्यों का उत्तर विज्ञान नहीं दे सकता। इसके लिए दर्शनशास्त्र ही सहायक होगा।

उदाहरण के रूप में विज्ञान ने परीक्षण किए और पता किया कि प्राणी का बीज (Germ-cell) प्राणी की सहायता के बिना नहीं बन सकता। यह क्यों है इसका उत्तर विज्ञान नहीं दे सकता प्रत्युत् दर्शनशास्त्र देगा।

इसी प्रकार परमाणु अंतर्गत कणों के विश्लेषण से पता चला है कि जब प्रोटोन (Proton) नष्ट होता है तो वह शक्ति में विलीन हो जाता है। वैज्ञानिकों ने प्रोटोन को विनष्ट कर शक्ति तो प्राप्त कर ली, परंतु यह प्रोटोन क्यों बना? इसका उत्तर वैज्ञानिक नहीं दे सकता। यह उत्तर दार्शनिक देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय दार्शनिक तत्कालीन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिकों के आश्रय अपना दर्शनशास्त्र चलाने लगे। उनके विचार की सीमा वैज्ञानिकों ने निश्चय की थी और परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन दार्शनिक पंगु हो नास्तिक बन गए।

सुकरात ने अपने 'दर्शन' (Philosophy) का आधार विज्ञान नहीं बनाया था। उससे पहले भी यूनान में कई दार्शनिक हो चुके थे। थेल्ज़ (Thales) हरक्लिप्टस (Hercliptus) तथा परमेनाईडीस (Parmenides) इत्यादि। वे प्राय: बाह्य पदार्थों, अर्थात् प्रकृति और नापी-तोली जा सकनेवाली वस्तुओं के विषय पर ही लिखते तथा कहते रहे। परंतु सुकरात ने कहा—That is very good....but there is an infinitely worthier subject for philosophers than all these trees and stones and even all those stars. There is the mind of man. What is man and what can he become?

(यह सब कुछ ठीक है....परंतु इनसे कहीं अधिक योग्यतर विषय दार्शनिकों के विचार के लिए है। इन पेड़ों, पत्थरों और उन सब तारागणों से भी अधिक उपयुक्त विषय है मनुष्य का मन। मनुष्य क्या है और यह क्या बन तकता है ?)

इस प्रकार दृश्य संसार के विषय में विचार करने के स्थान सुकरात मानव आत्मा के विषय में जानने का यत्न करता रहा था।

योरोप के सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के दार्शनिक स्पिनोजा, वाल्टेयर, रूसी, हर्बर्ट, स्पैंसर, फ्रैडरिक, नीत्शे, सबके सब तत्कालीन विज्ञान से अपने विचारों को सीमा बाँधते थे। इस कारण ये प्राय: मनुष्य और मानव समाज के बाहरी रूप के विषय में ही विचार कर सके थे।

फ्रैडरिक नीत्शे (Friedrich Nietzsche) के विषय में कहा जाता है कि Nietzsche was the child of Darwin and the brother of Bismark.

ये लोग रईसों के राज्य (Aristocracy), जनता के राज्य (Democracy), विकासवाद (Evolution theory) पर लिखते रहे। इनकी दृष्टि इस जगत् और मानव जंतु के गंभीर तत्त्व की ओर जा ही नहीं सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके विपरीत कठोपनिषद् का नचिकेता प्रश्न करता है—

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढ़मनुप्रविष्टो। नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥[1]

(मरने के पश्चात् जीव रहता है या नहीं रहता? मुझे बताइए कि महान् परलोक क्या है? मुझको अन्य कुछ नहीं चाहिए।)

इससे पूर्व यमराज से दिया गया सांसारिक वैभव पुत्र, कलत्र, धन, दौलत सब कुछ वह अस्वीकार कर चुका था। उसने अपनी अभिलाषा आत्मतत्त्व के विषय में जानने की ही प्रकट की।

कहने का अभिप्राय यह है कि दर्शन का स्थान विज्ञान अर्थात् निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान को पार करके है, न कि उसके अंतर्गत।

यही कारण है कि जब विज्ञान आत्मतत्त्व के विषय में कुछ नहीं जान सका तो उस विज्ञान की बँधी सीमा में रहनेवाले दार्शनिक नास्तिक हो गए। वे पूर्ण संसार की घटनाओं को पार्थिव पदार्थों के आधार पर वर्णन करने लगे। इन्होंने प्राणी की चेतना को भी, गंधक के तेजाब से हाइड्रोजन उत्पन्न करनेवालों की भाँति, तेजाब और क्षारों का मिश्रण मान लिया।

मनुष्य एक प्राणी है। प्राणियों में वह जंतु है। जंतुओं में वह सर्वश्रेष्ठ है।

प्राणी, जैसा कि भारतीय शास्त्र मानते हैं, प्रकृति जीव और परमात्मा के संयोग को कहते हैं। मनुष्य दूसरे प्राणियों से इस बात में श्रेष्ठ है कि इसमें बुद्धि-यंत्र अन्य प्राणियों से अधिक उन्नत है।

शारीरिक बल और शारीरिक आकार-विस्तार में तो अन्य कई जंतु इससे श्रेष्ठ हैं। रूप-रंग में भी कई जंगली जानवर अधिक सुंदर दिखाई देते हैं, परंतु पृथ्वी पर सब जलचरों तथा नभचरों से अधिक विकास-योग्य बुद्धि-यंत्र मनुष्य को ही मिला है।

यह ठीक है कि सब मनुष्यों की बुद्धि एक समान विकसित नहीं

---

1. कठो० 1-1-29

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती, न ही एक समान विकास पा सकती है। इस पर भी यह निश्चित बात है कि मनुष्य की बुद्धि भू-मंडल के अन्य सब जीव-जंतुओं की बुद्धि से अधिक विकास-योग्य है। एक साधारण मनुष्य किसी भी साधारण जंतु से अधिक विकास-योग्य बुद्धि रखता है। अतः मनुष्य एक बुद्धिशील प्राणी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

मनुष्य की उत्पत्ति

वैज्ञानिक किसी भी बात को तब तक मानने के लिए तैयार नहीं होता, जब तक वह उसको अपनी प्रयोगशाला में बनाकर न देख ले।

परंतु डार्विन के विकासवाद को वैज्ञानिक बिना किसी प्रकार का परीक्षण किए कैसे मान बैठे, यह एक न समझ में आनेवाली बात है। डार्विन ने तो केवल यह कहा था कि बहुत से जीव-जंतुओं के अध्ययन के उपरांत यह समझ में आता है कि सब प्राणी एक आदि प्राणी की संतान हैं। यह एक वैज्ञानिक का कथन नहीं था प्रत्युत् एक दार्शनिक का कथन था। दार्शनिक के कथन की परीक्षा युक्ति से ही की जा सकती है। दार्शनिकों की बात दार्शनिक ही सिद्ध अथवा असिद्ध कर सकते हैं। इसी कारण विस्मय होता है कि इसको एक वैज्ञानिक तथ्य कैसे मान लिया गया? विज्ञान में अतुल उन्नति और तकनीकी चातुर्य में असीम विकास हो जाने पर भी वैज्ञानिक जंतुओं की कोई भी नवीन जाति निर्माण नहीं कर सके। युक्ति भी इस बात की पुष्टि नहीं कर सकी कि मनुष्य की-सी बुद्धि किसी इतर् जीव-जंतु में उत्पन्न हो सकती है।

साथ ही डार्विन का विकासवाद, जड़ से चेतन प्राणी के निर्माण का प्रयोगशाला में सिद्ध होना तो दूर रहा, युक्ति में भी ठहर नहीं सका। प्रथम जीव कैसे बना अथवा कहाँ से आया, विकासवाद नहीं बता सका। अतः अधिक-से-अधिक हम विकासवाद को एक लँगड़ावाद ही कह सकते हैं। यह एक वैज्ञानिक तथ्य तो है ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत दर्शनशास्त्र, विशेष रूप में भारतीय दर्शनशास्त्र पृथ्वी पर प्राणी की उत्पत्ति का वर्णन अधिक स्पष्ट और विचारयुक्त ढंगसे करते हैं। भारतीय शास्त्र इस पृथ्वी पर मानव-सृष्टि तथा पशु-पक्षी इत्यदि की सृष्टि का एक विषद् वृत्तांत बताते हैं।

यह ठीक है कि भारतीय विवेचना का आधार आस्तिकवाद है अर्थात् भारतीय दर्शनशास्त्र यह मानता है कि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक परमात्मा है। उसके आधार पर ही सृष्टि, जड़ और चेतन की उत्पत्ति का वर्णन भारतीयशास्त्र करता है।

आत्मतत्त्व की उपस्थिति के विषय में तो हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि आत्मतत्त्व को मानकर भारतीय दर्शनशास्त्र सृष्टि की उत्पत्ति की एक प्रक्रिया बताते हैं। वह प्रक्रिया डार्विन के विकासवाद से अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होती है।

वेदों में संक्षिप्त रूप में तथा अलंकार बाँधकर सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में लिखा है—

अग्नि मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।[1]

इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—

अग्निरूपी परमात्मा जो जगत् रूपी सृष्टि के निर्माण से पहिले भी था, वह यज्ञ कर रहा है, जिससे सबका कल्याण होता है।

इसी भाव को श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य, इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥[2]

परमात्मा एक ही है। वह इन लोकों को बनाता है और उन पर शासन करता है।

---

1. ऋ० 1-1-1
2. श्वे० 3-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके भीतर वह ठहरा हुआ है। समय पर वह विश्व का निर्माण करता है और फिर प्रलयकाल में सबको अपने में समा लेता है।

इससे कुछ अधिक व्याख्या में ऋग्वेद के मंत्र १-९५-१ में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में लिखा है। उसमें अग्नि (शक्ति) जिसको परमात्मा का निर्माता रूप माना है, दो प्रकार की मानी है। ये अग्नियाँ दिन और रात की भाँति एक-दूसरे के बालक का पोषण करती हैं। परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति दो रूपों में प्रकट होकर दोनों द्वारा बन रही सृष्टि का पालन करती है।

इसकी तुलना वर्तमान युग के वैज्ञानिकों के इलेक्ट्रॉन (Electron) और प्रोटॉन (Proton) से की जाए तो अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाएँगे।

इससे भी अधिक स्पष्ट वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है। उपनिषदकार कहता है—

ब्रह्म दिन के उषा काल (सृष्टि के आरंभ) में परमात्मा का यज्ञ (सृष्टि उत्पत्ति का कार्य) आरंभ हुआ। प्रकृति ने आत्मवान् होने की इच्छा की; इससे प्रकृति में गति उत्पन्न हुई। उस गति से समुद्र की भाँति विशाल करोड़ों-पद्मों मीलों में आपः (महत्) उत्पन्न हुआ। उसमें पुनः उसी आत्मा के बल से चक्राकार गति उत्पन्न हुई और हिरण्यगर्भ (नैबुला) बना। इससे सूर्य तथा नक्षत्र बने।[1]

नक्षत्रों में धर्म की व्यवस्था बनी (नियम से कार्य करने का चलन हुआ), तो उन पर सृष्टि हुई।[2]

इस प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति का अति संक्षिप्त परंतु स्पष्ट विवरण वेद आदि ग्रंथों में मिलता है। इसकी अधिक व्याख्या पुराणादि ग्रंथों में पाई जाती है।

उदाहरण के रूप में पृथ्वी पर जब देवता धर्मबद्ध होकर (अर्थात्

---

1. वृहदा० अध्याय 1, ब्राह्मण 2
2. वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक दिव्य पदार्थ, वायु, सूर्य, चंद्रमा, वरुण, इत्यादि नियमपूर्वक) कार्य करने लगे तो यहाँ पर एक विराट् पुरुष बना। परमाणुओं की चक्राकार गति से एक चलायमान वृहत् अंडाकार गोला बना। अपनी चक्राकार गति से उत्पन्न अभिकेंद्रीय बल (Centrifugal force) से वह गोला टूट गया और उसमें से अनेकों प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए।[1]

जब सब प्राकृतिक शक्तियाँ और पदार्थ जीवन को चलाने योग्य हो गए, तब परमात्मा की शक्ति से और आत्माओं के संयोग से गर्भपिंड की भाँति एक महान् अंडाकार विराट् पुरुष बना। वह बड़ा हुआ और जगत् के सब पदार्थों की भाँति चक्राकार गति से घूमने लगा। इस गति से उत्पन्न अभिकेंद्रिय बल से वह अंडाकार विराट् पुरुष फूटा और उससे जीव-जंतु उत्पन्न हुए।

यह भी संभव है कि उस समय की पृथ्वी पर की अवस्था में एक के स्थान अनेकों विराट् पुरुष बने हों। उल्लेखनीय बात इस प्रक्रिया में यह है—

१. विराट् पुरुष के फूटने पर सब प्राणी एकदम बने;

२. सब प्राणी पूर्ण बने अर्थात् उनके सब अंग-प्रत्यंग पूर्ण थे;

३. प्रत्येक प्राणी में परमात्मा की शक्ति का वास था। प्रत्येक में आत्मा की उपस्थिति थी और प्रत्येक का शारीरिक गठन पूर्ण था। अर्थात् उनमें मन, बुद्धि, इंद्रियाँ तन्मात्रा इत्यादि की उपस्थिति थी;

४. ये जीव-जंतु आदिकाल में भी वैसे ही थे, जैसे आज हैं। अंतर था इनकी बुद्धि में विकास का। फिर उस विकास से उत्पन्न सुख-सामग्री पीछे हुई। इसके लिए भी कुछ आत्माएँ पूर्व कल्प के श्रेष्ठ कर्मफलों से इस विराट् पुरुष से उत्पन्न शरीरों में आईं और वे अपने पूर्व कल्प के संचित ज्ञान से वेदादि शास्त्र कहने लगीं। यही ज्ञान का स्रोत मनुष्य को उन्नति करने में सहायक हुआ।

---

1. भा० पु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ज्ञान से अन्य ज़ीव-जंतु (पशु-पक्षी इत्यादि) तो लाभ नहीं उठा सके, परंतु मनुष्य की विकासशील बुद्धि इससे लाभान्वित हुई।

परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति, जिसको वेदों में अग्नि नाम से स्मरण किया है, पुराणादि ग्रंथों में उसको ब्रह्मा, प्रजापति इत्यादि नामों से लिखा गया है, उसने सब-कुछ बनाया, जिसमें प्राणी-सृष्टि और मनुष्य भी हैं।

जब मनुष्य तथा अन्य जीव-जंतु बन गए तो मनुष्य अपनी बुद्धि के आश्रय और ऋषियों द्वारा बताए ज्ञान से लाभ उठा, इस पृथ्वी पर सुखपूर्वक रहने लगा।

लगभग यही प्रक्रिया उन सब प्राचीन विद्वानों ने लिखी है जो परमात्मा और आत्मा के अस्तित्व को मानते थे।

यूँ तो परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास न रखनेवाले मनुष्य सदा रहे हैं, परंतु किसी-न-किसी कारण प्राचीन नास्तिकों के लेख इत्यादि कुछ अधिक नहीं मिलते। उनका उल्लेख आस्तिकों के ग्रंथों में ही मिलता है और वहाँ पर उनके सिद्धांतों को त्रुटिपूर्ण बताकर उन सिद्धांतों के कारण ही उनके विनाश का उल्लेख भी है। परंतु योरोप के कुछ प्राचीन दार्शनिकों के लेख मिलते हैं जो परमात्मा के अस्तित्व पर संदेह करते थे। अरस्तू उनमें एक था। ये दार्शनिक सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में कुछ स्पष्ट लिख नहीं सके।

योरोप के अर्वाचीन दार्शनिक जो इस काल की वैज्ञानिक उन्नति से चकाचौंध हो भौतिकवाद के पीछे चल पड़े हैं, वे सृष्टि-उत्पत्ति का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस काल के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के गुरु डार्विन हुए हैं। ये महानुभाव दक्षिण अमरीका के जंगलों में तथा कुछ गरम जलवायु वाले द्वीपों में घूमते हुए यह देख चकित रह गए कि जीव-जंतु एक क्रमबद्ध शृंखला में खड़े किए जा सकते हैं। इस शृंखला के एक किनारे पर सरलतम जीवन का जीव (अमीबा) होगा और दूसरे किनारे पर विषमतम जीवन का प्राणी (मनुष्य) होगा। इन दोनों के बीच शेष सब जीव एक शृंखला में इकट्ठे किए जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-M
Central Library
167.59
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डार्विन का उक्त कथन इस सृष्टि पर वस्तु-स्थिति का वर्णन करता है। परंतु इससे अगला कथन कि भूख-प्यास, शीत-गर्मी तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं ने प्राणियों में परिवर्तन और भेद-भाव उत्पन्न किए हैं, सिद्ध नहीं होता। उदाहरण के रूप में उसने लिखा है कि स्थल पर जब बड़े-बड़े जंतु छोटों को खाने लगे तो छोटे जंतुओं में पंख बन गए और वे जीवन के भय से उड़कर बच गए। ये पक्षी बने। कुछ अन्य जंतु जल में घुसकर जीवन बचा सके और वे जलचर बन गए।

यह और इसी संबंध के अन्य कथन केवल कल्पना मात्र हैं। इनका प्रमाण कुछ नहीं तथा यह बात होती हुई कहीं न तो देखी गई है, न ही इसके प्रमाण मिलते हैं।

कई जंतुओं की जातियाँ विलुप्त हो गई हैं और उनके कंकाल देखे गए कहे जाते हैं। जो जंतु प्राकृतिक वातावरण को सहन करने की शक्ति रखते थे, वे बच गए और पृथ्वी पर इस समय दिखाई देते हैं। यह सब ठीक है, परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सब जीव एक से ही विकसित हुए हैं।

साथ ही जीवन, अभिप्राय यह कि चेतना कैसे बनी, इस रहस्य का उद्‌घाटन ये वैज्ञानिक नहीं कर सके।

इन अधूरी बात कहनेवाले वैज्ञानिकों से निश्चित की गई सीमा में विचार करनेवाले दार्शनिक हर्बर्ट, स्पैंसर, हेगेल इत्यादि भी जीव-सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन नहीं कर सके।

एक ओर परमात्मा तथा आत्मा (आत्मतत्त्व) के अस्तित्व में विश्वास रखनेवाले तो सृष्टि पर जीव-सृष्टि की एक प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। उसकी एक संक्षिप्त-सी व्याख्या हमने ऊपर दी है। उनका कहना है कि परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के संयोग से जीवों का बीज बना। उनका यह भी कहना है कि परमात्मा तो सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने से सब स्थानों पर सब समय उपस्थित रहता है, परन्तु प्राणी का बीज निर्माण तब होता है जब आत्मा जो पुरुष और स्त्री में विद्यमान होता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना सहयोग देता है। आत्मा के सहयोग के बिना प्राणी का निर्माण सम्भव नहीं।

आज के वैज्ञानिक भारतीय दार्शनिकों की इस बात को नहीं मानते। यह इसलिए कि वे अपने किसी उपकरण (apparatus) से बीज बनाने में आत्मा के सहयोग को देख नहीं सके। वे शरीर का सहयोग तो देखते हैं, परंतु शरीर में आत्मा की उपस्थिति को न मानने से वे शरीर के सहयोग के साथ-साथ आत्मा के सहयोग को नहीं मानते।

परंतु वे जीवित शरीर के बिना किसी भी जड़ पदार्थ से प्राणी का बीज-निर्माण नहीं कर सके। इस अवस्था में भी वे आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करनेवाले दार्शनिकों की बात को स्वीकार न कर केवल हठधर्मी ही प्रकट कर रहे हैं।

आत्मतत्त्व के अस्तित्व में युक्ति तो हम अगले प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ हमारा कहना यह है कि जड़वादी अर्थात् वे लोग जो जड़ से ही चेतन की उत्पत्ति मानते हैं, इस उत्पत्ति को न तो सिद्ध करके दिखा सके हैं, न ही उसकी किसी प्रक्रिया का युक्तियुक्त वर्णन उपस्थित कर सके हैं।

इसके विपरीत, आत्मतत्त्व की पृथक् और स्वतंत्र उपस्थिति माननेवाले एक प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। वह प्रक्रिया पूर्णतया संतोषजनक न प्रतीत होते हुए भी जड़वादियों के अज्ञ विवरण से अधिक माननीय प्रतीत होती है।

वास्तव में आस्तिकों पर भार इस बात का पड़ जाता है कि वे इस जगत् में आत्मतत्त्व की उपस्थिति को सिद्ध करें। यदि यह स्पष्ट हो जाए कि पूर्ण जगत् के व्यवहार में और प्राणी के व्यवहार में आत्मतत्त्व की उपस्थिति है, तब तो सृष्टि के आदि में प्राणी का बन सकना और नित्य प्राणियों का बनना स्पष्ट हो जाएगा और समझ में आने लगेगा।

जड़वादी इस अधारभूत बात (आत्मतत्त्व की उपस्थिति) को न मानकर सब-कुछ अनर्गल ही वर्णन करते हैं। उनसे वर्णित जड़ पदार्थों की बातें तो ठीक सिद्ध हो रही हैं, परंतु जो कुछ भी उन्होंने चेतन जगत् के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में कहा तथा लिखा है, वह न केवल असत्य सिद्ध हुआ है वरन् भ्रमोत्पादक है और भू-मंडल में अव्यवस्था तथा दुःख की सृष्टि करने वाला है।

प्राणी जगत् की सर्वोत्कृष्ट विभूति मनुष्य है और मनुष्य की उत्पत्ति अंग-प्रत्यंग संपूर्ण आदि सृष्टि में ही हुई थी। प्रथम मनुष्य वस्त्रविहीन था और बिना घर के था; अन्य सब प्राणियों की भाँति यह जंगलों में तथा जलवायु (temperate climate) वाले स्थानों पर रहता था।

मनुष्यों में कुछ ऋषियों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने मनुष्यों को जीवन के ढंग सिखाए। साथ ही धर्मपूर्वक रहना सिखाया।

मनुष्य एक बुद्धिशील प्राणी होने के कारण वस्तुओं के विषय में सीखने लगा। बुद्धिशील से हमारा अभिप्राय यह है कि वह ऐसी बुद्धि रखता था और रखता है जिसमें विकास संभव है। ऋषियों के उपदेश ने मनुष्यों को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का ढंग सिखाया।

ये ऋषि ब्रह्मा (परमात्मा) के मानस पुत्र कहाए और इन द्वारा दिए गए उपदेश वेद कहाए। मानस पुत्र से अभिप्राय है परमात्मा के ज्ञान से परिचित अर्थात् उस ज्ञान से परिचित जो परमात्मा मनुष्य को देना चाहता था।

महाभारत में लिखा है—

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥[1]

परमात्मा के छः मानस पुत्र विख्यात हुए हैं। उनके नाम हैं : मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह तथा क्रतु। इनके अतिरिक्त भी कई ऋषि हुए। वे विख्यात नहीं हुए।

महाभागवत पुराण में दस पुत्रों के नाम दिए हैं। उक्त छः के अतिरिक्त भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद भी मानस पुत्र बताए हैं।

---

1. महा भा० आदि० 6. 10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक झलक उस ज्ञान की भी हम दे देना चाहते हैं, जो ऋषियों ने मनुष्य को दिया।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥[1]

(सृष्टि उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखनेवाला) अग्निस्वरूप परमेश्वर (होता) सब पदार्थों का देनेवाला है और सबको अपने में लेनेवाला है; (कविक्रतु) ज्ञानवान् निर्माता (सत्य) है और (चित्र श्रवस्तमः) अद्भुत उपदेश का देनेवाला है। (देवः) वे देनेवाले (देवेभिः) विद्वान् (आगयतः) हमको प्राप्त हों।

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे।
उरूची सोमपीतये।[2]

(वायो) पूर्ण जगत् में गति उत्पन्न करनेवाले परमात्मा, (तव) तेरी (धेना) वेद वाणी (प्रपृञ्चती) पूर्ण ज्ञान देनेवाली है। यह (दाशुषे) दूसरों को ज्ञान देनेवालों को (जिगाति) प्राप्त होती है। और वह (सोम-पीतये) पदार्थों का सार और ज्ञान (उरूचि) कराती है।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वेनतं गिरः॥[3]

(अश्विना) हे स्त्री-पुरुषो, (पुरदंससा) तुम बहुत प्रकार के कर्म करने में कुशल हो; (नरा) सब जीव-जंतुओं में नायक अर्थात् श्रेष्ठ हो; (धिष्ण्या) शत्रुओं अर्थात् विरोधियों का दमन करने में योग्य हो, (शवीरया धिया) ज्ञानयुक्त बुद्धिः (गिरः वेनतम्) तथा वाणियों का प्रयोग करो।

इस प्रकार का उपदेश ऋषि लोग उस समय उत्पन्न हुए मानवों को देते थे।

---

1. ऋ० 1-1-5
2. ऋ० 1-2-3
3. ऋ० 1-3-7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन उपदेशों से मनुष्य की बुद्धि में विकास हुआ। इस विकास में लाखों वर्ष नहीं लगे। बुद्धि के विकास में कुछ वर्षों की ही आवश्यकता होती है। यह हम इस युग में भी देख रहे हैं। बालक कुछ ही वर्षों में सज्ञान पुरुष हो जाता है। वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति भी जो बुद्धि का ही खेल है, एक-दो शताब्दियों में ही संभव हुई है।

यह ठीक है कि उस प्राचीनकाल में बुद्धि का विकास एक ऐसी दिशा में हुआ था, जो आजकल के ज्ञान की दिशा नहीं, परंतु जिस दिशा में हुआ वह अद्‌भुत था। मानवता का ज्ञान अर्थात् मनुष्य के इतर जीव-जंतुओं से विशेषता का ज्ञान मनुष्य को आज से भी अधिक था।

एक बात तो हमने ऊपर लिखी है। डार्विन के विकासवाद को हमने चुनौती दी है। हमारा यह कहना है कि यह विकासवाद वैज्ञानिक तथ्य नहीं है। यह एक दार्शनिक की कल्पनामात्र है। इसका आधार जड़वाद है अर्थात् डार्विन ने सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना प्रकृति से ही, बिना किसी चेतन-शक्ति के सहयोग के, वर्णन करने का यत्न किया है। यह यत्न एक असफल यत्न है। कारण यह कि पूरी शृंखला में मार्मिक कड़ी कि जड़ से प्रथम जीव अथवा जीव के बीज की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका वर्णन नहीं किया जा सका।

दूसरी ओर भारतीय विचारधारा का आधार है आत्मतत्त्व की मान्यता। आत्मतत्त्व को मानकर बीज की उत्पत्ति की कल्पना अधिक सफल हुई है। भारतीय विद्वानों का कहना है कि चेतन की मीमांसा जड़ पदार्थों की भाँति नहीं की जा सकती। उन पर परीक्षण भी प्रयोगशाला में नहीं किए जा सकते। कारण यह कि यह आत्मतत्त्व इंद्रियों का विषय नहीं। इस पर भी इसकी उपस्थिति अकाट्य युक्तियों से सिद्ध हो सकती है।

हमने प्रथम अध्याय में यह सिद्ध किया है कि मनुष्य एक चेतन जंतु है। यह सब जंतुओं से श्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता इसकी बुद्धि में है। इसकी बुद्धि पृथ्वी पर के सब जलचर तथा नभचर जंतुओं से अधिक विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की सामर्थ्य रखती है।

इस दूसरे अध्याय में हमने यह बताया है कि मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की उत्पत्ति कैसे हुई। इसमें हमने भारतीय विचार बताया है। जब पृथ्वी पर जलवायु बना और भूमि पर वनस्पति इत्यादि उत्पन्न हो गईं, तब परमात्मा की अद्‌भुत शक्ति से और आत्मा के संयोग से एक विराट् पुरुष बना और उस विराट् पुरुष के फट जाने पर उसमें से भाँति-भाँति के जीव-जंतु बन गए। हमने यह भी बताया है कि माँ के गर्भ में भी जीव की उत्पत्ति अर्थात् बीज की उत्पत्ति परमात्मा और माता-पिता की आत्मा के संयोग से ही संभव होती है।

विराट् पुरुष के बनने के समय पृथ्वी पर प्रकृति की वही अवस्था थी जो माता और पिता में रज और वीर्य कोषाणु के बनने के समय होती है। उस अवस्था में ही आत्मतत्त्व के संयोग से बीज की उत्पत्ति संभव है।

विराट् पुरुष से सब प्राणी तथा जीव-जंतु अंग-प्रत्यंग में पूर्ण वैसे के वैसे ही उत्पन्न हुए, जैसे आज माँ के पेट से निकलते समय अथवा अंडे से बाहर निकलते समय बने होते हैं।

हमने यह भी बताया है कि कुछ ऋषि भी विराट् पुरुष से उत्पन्न हुए और उनके दिए ज्ञान से आदि मनुष्यों में बुद्धि का विकास हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

आत्मतत्त्व

आज के वैज्ञानिक तथा सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के दार्शनिक तो चेतन और जड़ में भेद का कारण वर्णन नहीं कर सके। वे यह तो मानते हैं कि जड़ से ही चेतना की उत्पत्ति हुई है और होती है, परंतु वे इसमें कोई कारण नहीं बता सके कि क्यों चेतन माता-पिता के सहयोग के बिना जड़ चेतन में बदल नहीं सकता? अतः उनके आत्मतत्त्व के मानने अथवा न मानने से कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

इस पर भी यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान युग में भी जिस-जिस वैज्ञानिक तथा दार्शनिक ने जड़-चेतन की समस्या पर विचार किया है, वह इसी परिणाम पर पहुँचा है कि जड़ के अतिरिक्त भी एक सत्ता है और उसके सहयोग से ही जीव की उत्पत्ति संभव हुई है।

उदाहरण के रूप में एक विख्यात वैज्ञानिक, सर ऑलिवर लॉज एक पुस्तक 'सायंस ऐंड रिलीजन' (Science and Religion) में लिखते हैं—

Once you realise that consciousness is something greater, something outside the particular mechanism which it makes use of, you realise that the survival of existance is natural, is the simplest thing. It is unreasonable that the soul should jump out of existance when the body is destroyed. We ourselves are not limited to the few years that we live on this earth. We shall go on without it. We shall certainly continue

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to exist. We shall certainly survive. Why do I say that? I say it on definite scientific grounds.[1]

इस कथन का अर्थ इस प्रकार है—एक बार आप इसको देखें कि चेतना उस मशीन से जो इसका प्रयोग करता है, बड़ी है और इसके अतिरिक्त है, तो आप समझ सकेंगे कि जीवन का चलता रहना एक स्वयं-सिद्ध और एक सरल-सी बात है। यह अयुक्तिसंगत है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा एकाएक अस्तित्वहीन हो जाए। कुछ वर्ष जो हम इस पृथ्वी पर रहते हैं, हमारे जीवन की सीमा नहीं। हम इसके (पृथ्वी के) बिना भी जिएँगे। निश्चय ही हम (जीवन के उपरांत भी) रहेंगे और मरने के पीछे भी होंगे। मैं यह क्यों कहता हूँ? मेरे कहने का आधार स्पष्ट रूप में वैज्ञानिक है।

सर ऑलिवर लॉज इस शताब्दी के आरंभ में एक अति विख्यात वैज्ञानिक हो चुके हैं। ये एफ०आर०एस०, डी०एस-सी०, एल०एल०डी० की उपाधियों से विभूषित थे।

आप लिवरपूल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे, बिरहंगम विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल, फिज़िकल सोसायटी लंदन के अध्यक्ष, रिसर्च फिज़िकल सोसायटी के प्रधान और ब्रिटिश ऐसोसिएशन के प्रधान थे।

यह पुस्तक 'सायंस एंड रिलिजन' लंदन में सात वैज्ञानिकों की निरंतर सात दिन तक हुई कॉन्फरेंस का परिणाम थी। ये सातों के सातों वैज्ञानिक अपने काल के अति प्रसिद्ध विद्वान् थे। कॉन्फरेंस १९१४ में हुई थी।

इसी पुस्तक में एक अन्य स्थल पर लिखा है—

. The old materialistic school—Heckel's School, if you like—which, let me tell you, is hopelesly out of date and antiquated.[2]

---

1. Science & Religion, Page 24
2. Ibid. Page 63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैकल जैसे जड़वादियों का भौतिकवाद अप्रमाणित और युग से दूर हो चुका है।

पुन: लिखा है—

Not very long ago, it was to some extent fashionable in scientific circle to be an agnostic. But to-day a man who glories in his ignorance is blamed and lionised. The attitude is quite out of fashion. Thanks to the labours of Science.[1]

कुछ ही काल पहले वैज्ञानिकों में नास्तिक होना फैशन माना जाता था, परंतु आज एक व्यक्ति जो इस प्रकार की अज्ञानता में गर्व करता है, निन्दनीय माना जाता है। हमको विज्ञान की उन्नति का धन्यवाद करना चाहिए।

अन्य भी कई योरोपीय विद्वान् हुए हैं जो इस विषय में आत्मतत्त्व की उपस्थिति मानते हैं।

एक अन्य पुस्तक The Nature and Origin of Life में विज्ञ लेखक लिखता है—

Dead matter cannot become living without coming under the influence of matter previously living. This seems to me as sure a teaching of science as the law of gravitation.[2]

(जड़ पदार्थ किसी चेतन पदार्थ के प्रभाव में आए बिना चेतन नहीं हो सकता। मुझको यह नियम वैसा ही वैज्ञानिक प्रतीत होता है, जैसा भू-आकर्षण का नियम।)

परंतु आत्मतत्त्व के विषय में भारतीय दार्शनिक इससे भी अधिक स्पष्ट हैं। आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिए वेदादि शास्त्रों के प्रमाण तो उनको ही दिए जा सकते हैं जो वेद को ईश्वरीय ज्ञान पहले से ही मानते हों। परंतु जो किसी भी ईश्वरीय ज्ञान को मानते नहीं, उनके समक्ष हीं इसके अस्तित्व

1. Ibid.pp. 85-06

2. P. 173

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सिद्ध करने की आवश्यकता थी। जो ईश्वर को ही नहीं मानते तो ईश्वरीय ज्ञान को क्या मानेंगे? अतः बिना वेदशास्त्र के प्रमाण के आत्मतत्त्व की सिद्धि भारतीय दार्शनिकों ने की है।

वेदांत दर्शन और सांख्य-दर्शन इस विषय में उल्लेखनीय हैं। यहाँ हम यह बता दें तो ठीक होगा कि भारतीय वाङ्मय में छः दर्शन हैं। दार्शनिक तो अनेकों हो चुके हैं, परंतु उनके विचार की छः प्रकार की शैलियाँ हैं। ऊपरी सतह पर ये छः दर्शन भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। वास्तव में ये ऐसे हैं नहीं। ये भिन्न-भिन्न विषयों पर दार्शनिक विवेचनाएँ हैं। अपने-अपने विषय के प्रतिपादन के इनके अपने-अपने ढंग हैं। इस कारण किसी एक दर्शनशास्त्र में दूसरे के विषय का उल्लेख नहीं है और प्रत्येक की अपनी-अपनी युक्ति है।

उदाहरण के रूप में सांख्य-दर्शन में आत्मतत्त्व के कारण जड़-जगत् और जीव-जगत् में अंतर सिद्ध करने का यत्न किया गया है; परंतु आत्मतत्त्व एक ही प्रकार का है अथवा दो प्रकार का है, इस विषय पर कुछ नहीं लिखा। न्याय-दर्शन में आत्मतत्त्व को दो प्रकार का माना है और ऐसा सिद्ध करने का यत्न किया है। इसी प्रकार वेदांत में पूर्ण चराचर जगत् का कारण परमात्मा को माना है; परंतु वह उपादान कारण है अथवा निमित्त कारण है, इस विषय में नहीं लिखा। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सांख्य एक ही आत्मतत्त्व को मानता है अथवा वेदांत जगत् के उपादान कारण को मानता ही नहीं। दर्शनकारों ने ये पक्ष अपने लेख के विषयांतर होने से वर्णन नहीं किए।

हमने लिखा है कि आत्मतत्त्व को वेदांत दर्शन ने सिद्ध किया है। जो युक्तियाँ दर्शनकार ने दी हैं, उनमें से कुछ हम यहाँ लिखना चाहते हैं। लिखा है—

जन्माद्यस्य यतः।[1]

---

1. ब्रह्मसूत्र 1-1-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे जन्मादि होता है। जन्मादि से अभिप्राय है बनना-बिगड़ना। हम नित्य देखते हैं कि ब्रह्मांड में वस्तुएँ बनती हैं और बिगड़ती हैं। इनको बनाने और बिगाड़नेवाला कोई होना चाहिए। अपने-आप न कुछ बन सकता है, न ही बिगड़ सकता है।

जगत् में सूर्य, चंद्र, तारागण इत्यादि एवं पृथ्वी पर भी पेड़, पक्षी इत्यादि बनते हैं अथवा विनष्ट होते हैं। ऐसा स्वयमेव नहीं हो सकता। स्वयमेव कहीं होते नहीं देखा जाता। सृष्टि का नियम है कि बिना किसी करनेवाले के कोई कर्म होता नहीं। तब यह मानना पड़ेगा कि सूर्य, चंद्र, तारागण इत्यादि को बनाने वाला कोई है। तारागण नष्ट होते दिखाई देते हैं। इनके नाश करनेवाला कोई होना चाहिए। पेड़ का बीज, प्राणी का बीज कौन बनाता है? यह अपने आप नहीं बन सकता।

वैज्ञानिकों ने बीज का विश्लेषण कर इसमें मिले तत्त्वों को ढूँढ लिया है। इस पर भी उन तत्त्वों को इकट्ठा कर रखे दें तो ये बीज नहीं बन सकते। इसको बनानेवाला कोई है। वह परमात्मा है।

एक पत्थर का ढेला किसी स्थान पर रख दिया जाए तो वह स्वयमेव चल नहीं सकता, परंतु पृथ्वी, चंद्र, सूर्य, तारागण निरंतर चल रहे हैं। इनको बनानेवाला कोई होना चाहिए। यह परमात्मा है।

यह है अभिप्राय, उक्त सूत्र का।

इसी प्रकार लिखा है—

शास्त्रयोनित्वात्—[1]

जो शास्त्र की योनि है। शास्त्र का अर्थ ज्ञान से है। जिससे ज्ञान मिलता है, वह परमात्मा है।

यह देखा गया है कि मनुष्य स्वयमेव ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। सृष्टि के आरंभ में मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति किससे हुई? वह परमात्मा है।

डार्विन इत्यादि दार्शनिक यह मानते हैं कि मनुष्य बार-बार भूलें कर

---

1. ब्रह्मसूत्र 1.1.3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी हुआ है। उनका सिद्धांत है ट्रायल एंड ऐरर (trial and error) अर्थात् भूलें कर-करके सबक सीखना। यह उन्नति का मार्ग है।

परंतु प्रश्न तो यही है कि कौन सबक सीखता है? एक पत्थर के टुकड़े को अग्नि में फेंक दें। वह पत्थर का टुकड़ा गर्म होकर टूट-फूट जाता है। पुनः आग जलने पर वह पुनः अग्नि में डाला जा सकता है, परंतु दूध का जला मनुष्य छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है। तो मनुष्य अथवा प्राणी में एक बार दुर्घटना होने से सबक सीखनेवाला कौन है?

सूत्रकार कहता है कि यह आत्मतत्त्व है। इस सूत्र का अर्थ है—ज्ञान जिससे पैदा होता है। वह आत्मतत्त्व है, मनुष्य अथवा कोई भी प्राणी बिना ईश्वर की सहायता के ज्ञानवान नहीं हुआ, न ही हो सकता है।

एक 'सोशलोजिस्ट' (समाजशास्त्री) का यह कहना है कि मनुष्य सबक सीखता है वातावरण से। मिस्टर आर०एम० मैकिवर और चार्ल्स एच० पेज अपनी पुस्तक 'सोसायटी' में लिखते हैं—

The growth of self : Study of the process in which the child develops the capacity for society furnishes us a second body of evidence of the fundamental unit-whole interrelationship. The emergence of the capacity for social life is an aspect of the growth of selfhood, of personality. The child does not merely imitate the social usages of adults, as a. parrot might pick up a language. He is cretainly imititative, but in the process of imitation his own social nature is gradually revealed.[1]

(स्वयमेव उन्नति करना—उस प्रक्रिया का अध्ययन जिससे एक बच्चा समाज में रहने की योग्यता प्राप्त करता है, एक दूसरी प्रकार के प्रमाण उपस्थित करता है, जिससे व्यक्ति और समाज के संबंध पर प्रकाश

1. P. 46 (1962);

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है। सामाजिक जीवन की योग्यता का प्रस्फुटित होना स्वयमेव उन्नति करने के एक पक्ष का द्योतक है। बच्चा केवल बड़ों की नकल कर, एक तोते के किसी भाषा के सीख जाने की भाँति, सामाजिक व्यवहार ग्रहण ही नहीं कर लेता। वह निश्चय नकल तो करता है, परंतु इस नकल करने की प्रक्रिया में उसकी अपनी सामाजिक प्रकृति भी प्रकट होती है।)

यह समाजशास्त्री दूसरे समाजशास्त्रियों से अधिक गंभीर दृष्टि रखता है, परंतु वह वास्तविक बात को तो छोड़ ही गया है। वास्तविक बात है एक बच्चे और जड़ पदार्थ में अंतर की।

उक्त लेखक का यह कहना है कि बच्चा केवल नकल ही नहीं करता वरन् नक्ल करते-करते कुछ अपनी ओर से भी संयोजित करता है। यह ठीक है, परंतु इससे भी अधिक यह है कि वह नकल भी क्यों करता है? एक पत्थर का टुकड़ा किसी दूसरे पत्थर की नकल नहीं करता। तोता भी नकल करता है तो इसलिए कि उसमें आत्मतत्त्व है।

तोते और मनुष्य में अंतर है बुद्धि की सामर्थ्य का। तोते की बुद्धि केवल नकल करने की योग्यता रखती है। उसकी बुद्धि में अन्य इतर प्राणियों की भाँति बुद्धि में विकास नहीं हो सकता। मनुष्य के बालक की बुद्धि में विकास हो सकता है। यह अन्तर तो है। इस पर भी जहाँ तक आत्मतत्त्व का प्रश्न है अब सब प्राणियों में एक समान कार्य करता हुआ देखा जाता है। आत्मतत्त्व का कार्य है, कार्य करना (action) नकल अथवा उस नकल करते-करते अपनी ओर से संयोजित (initiative) कार्य करना। यह आत्मा का काम है।

आरंभ में ज्ञान परमात्मा ने दिया। यह ऋषियों द्वारा दिया गया। जैसे बालक अपने बड़ों की नकल कर सीखता है वैसे आदि मनुष्यों ने इन ऋषियों से सीखा। तब से आधारभूत ज्ञान की परंपरा चली आती है। उस परंपरा की नकल करते-करते बालक बड़ों की बातें सीखते हैं और फिर कुछ अपनी बुद्धि से उसमें जोड़-तोड़ भी करते रहते हैं। यह आत्मतत्त्व के कारण ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्तु समन्वयात्।[1]

ब्रह्मांड में और पृथ्वी पर भी, वस्तुओं का समन्वय होता है। कहीं कई-कई पदार्थ मिलकर नवीन पदार्थ बनते हैं। फिर सब पदार्थ एक-दूसरे से नियमबद्ध हो व्यवहार करते हैं। संसार में पदार्थ टूटते हैं और बनते हैं। जड़ पदार्थों में अपने आप कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं होती। इसको करनेवाला जो है वह परमात्मा है।

सूर्य, चंद्र, तारागण बनते हैं, टूटते हैं और फिर एक नियमपूर्वक चलते हैं। इन जड़ पदार्थों में ऐसे समन्वय की सामर्थ्य किसी चेतनशक्ति के बिना संभव नहीं। इससे भी परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

इसी प्रकार—

ईक्षतेर्नाशब्दम्।[2]

इच्छा होती है, ऐसा कहा जाता है। तो यह इच्छा कौन करता है?

और भी—

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य।[3]

संयोग करना पुरुष (आत्मतत्त्व) का काम है। बात वही है जो वेदांत दर्शन के "तत्तु समन्वयात्" में वर्णन की गई है।

इस प्रकार आज के सहस्रों वर्ष पूर्व इन दार्शनिकों ने युक्तियों की भरमार कर दी थी। वे यह सिद्ध कर सके थे कि जड़ प्रकृति के अतिरिक्त आत्मतत्त्व इस जगत् में है, जो जड़ पदार्थों में गति, संयोग, वियोग और नियम से कार्य करने का विधान करता है और जो प्राणियों में चेतना का कारण है।

उनकी युक्तियाँ अकाट्य हैं। वे किसी भी प्रमाण से अथवा परीक्षण से असिद्ध नहीं की जा सकतीं। आत्मतत्त्व इंद्रियों का विषय न होने से

---

1. ब्रह्मसूत्र 1-1-5
2. ब्रह्मसूत्र 1-1-4
3. सां० द० 1-1-66

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने, सूँघने, सुनने, स्पर्श करने अथवा चखने से पता नहीं चलता। यह इतना सूक्ष्म है कि इसको इंद्रियातीत कहना चाहिए। वैज्ञानिकों के सब परीक्षण इंद्रियों के ही निरीक्षण में किए जाते हैं। अत: इस विषय में उनको अपने उपायों से सिद्ध न कर सकना इनके अस्तित्व को न मानने में कारण नहीं। यह आत्मतत्त्व दर्शन (Philosophy) का विषय है। उस दर्शन का जो इंद्रियों के निरीक्षण से आगे जाता है और वैज्ञानिकों से बँधी सीमा में अपने को सीमित नहीं रखता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

आत्मा-परमात्मा

वैज्ञानिक कहते हैं कि वे जब तक किसी बात को अपनी प्रयोगशाला में करके न देख लें, तब तक वे उसे मान नहीं सकते, परन्तु जो पदार्थ अति सूक्ष्म हैं, उनको इन्द्रियों से नहीं जाना जाता। परन्तु जिन पर परीक्षणों के परिणाम इन्द्रियगोचर होते हैं उनको तो वे मान सकते हैं। उदाहरण के रूप में, रेडियम के रासायनिक परमाणु (atoms) टूटते देखे नहीं जा सकते। परन्तु उनके टूटने से फोटोग्राफी के प्लेट पर प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार ऐटम बम से टूटनेवाले परमाणु टूटते समय इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते। परन्तु उनके टूटने से उत्पन्न परिणाम गरमी और प्रकाश इन्द्रियगोचर हैं। इस कारण परमाणुओं के टूटने को माना गया है।

यही बात आत्मतत्त्व के विषय में है। आत्मतत्त्व इन्द्रियगोचर नहीं, परन्तु चेतन प्राणियों को दूसरे चेतन प्राणी निर्माण करते तो हम देखते हैं। बीज में माता-पिता की चेतना जाते देखते हैं और बीज से प्राणी बनता है। यह भला आत्मतत्व की उपस्थिति का सूचक क्यों नहीं? चेतना से चेतना उत्पन्न होती है। यद्यपि उस प्रक्रिया को इन्द्रियाँ जान नहीं सकतीं, परन्तु परिणाम सामने है और दृष्टिगोचर होता है। यह आत्मतत्त्व के होने का प्रबल प्रमाण है।

इस स्थान पर एक विवाद यह उपस्थित होता है जिस आत्मतत्त्व से जगत् की रचना और विकास होता है, वैसा वह आत्मतत्त्व ही प्राणियों की

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kurukshetra University Collection. Harisingh Gour Central Library

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतना में कारण है? अथवा आत्मतत्त्व दो प्रकार के हैं। एक वह जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान है और उसका संचालन करता है और दूसरा जो प्राणी में चेतना उत्पन्न करता है।

जो आत्मतत्त्व के अस्तित्व को ही नहीं मानते और सब-कुछ चर-अचर, चेतन-अचेतन जड़ प्रकृति (matter) से ही बना मानते हैं, उनके लिए आत्मतत्त्व एक प्रकार का है अथवा दो प्रकार का, यह प्रश्न है ही नहीं। परन्तु जब एक बार यह बात प्रमाणित कर दी गई कि आत्मतत्त्व जड़ प्रकृति (matter) से एक पृथक् पदार्थ है, तब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप में सामने आता है कि जो आत्मा मनुष्य में है, क्या वही है जिसने सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि बनाए हैं और जो इनको चलाता तथा इनका विघटन करता है? अथवा वह और यह दोनों भिन्न-भिन्न हैं?

दोनों विचार के लोग उपस्थित हैं। वे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि आत्मतत्त्व एक ही है, परन्तु कई कारणों से वह कहीं और किसी समय प्राणी के शरीर में कार्य करता है और कहीं और कभी संसार के निर्माण, संचालन और विघटन में कार्य करता है। जब वह प्राणी के शरीर में कार्य करता है तब आत्मा कहाता है और जब वह जगत् की रचना, संचालन और प्रलय का कार्य करता है, वह परमात्मा कहाता है।

सबसे प्रथम यह समझ लेना चाहिए कि भारतीय शास्त्र इस विषय में क्या कहते हैं?

वेद में लिखा है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥[1]

(ऋक् इत्यादि वेदों में प्रतिपादित किए गए अविनाशी सबसे उत्कृष्ट, सबके रक्षक परमेश्वर में, सब सूर्यादि लोक आश्रय पा रहे हैं। जो उसको नहीं जानता, उसको वेद पढ़ने का कुछ लाभ नहीं। उसको जानना

1. ऋ० 1-164-39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही परमात्मा की उपासना करना है।)

इसी प्रकार वेद में अनेक स्थानों पर परमात्मा और उसके विषय में लिखा है।

यजुर्वेद में लिखा है—

ईशा वास्यमिदं सर्वꣳयत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।[1]

(जो कुछ भी जगत् में गतिशील है उसमें परमात्मा व्यापक है।)

पुनः लिखा है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥[2]

वह (परमात्मा) सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायुरहित, निर्मल, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयंभू है।)

ऋग्वेद में लिखा है—

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।[3]
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥

(ऐश्वर्यवान् परमात्मा धन को किसी के सामने हार नहीं सकता। न ही मृत्यु से परास्त होता है। विद्वान् लोग सर्वोत्पादक प्रभु की उपासना करते हुए उससे नाना प्रकार की याचना करते हैं। परमात्मा के साख्य भाव में रहता हुआ मनुष्य कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता।)

इस प्रकार परमात्मा कैसा है, इसके विषय में वेद में लिखा है।

यहाँ परमात्मा के कुछ लक्षण लिखे हैं। यह इस कारण कि जो आत्मतत्त्व प्राणियों में विद्यमान है, उससे इस आत्मतत्त्व की तुलना की जा सके।

---

1. यजु० 40-1
2. यजु० 40-8
3. ऋ० 10-48-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के विषय में प्राचीन भारतीय मान्यता संक्षेप में इस प्रकार है—

ईश्वर जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं, वह सच्चिदानन्द इत्यादि गुणों से युक्त है। उसके गुण , कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। वह सर्वज्ञ है, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सबका कर्ता-धर्ता-हर्ता, सब जीवों के कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणों से युक्त है।

अब उस आत्मतत्त्व, जो प्राणियों में रहता है, के लक्षण हम देखेंगे।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल का 164वाँ सूक्त आत्मा, परमात्मा और परमात्मा द्वारा संसार के संचालन के वर्णन में ही लिखा गया है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता
मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥[1]

(अस्य) इस विश्व को (वामस्य) वमन अर्थात् उत्पन्न करनेवाला (पलितस्य) पालन करनेवाला (होता) अपने में समा लेनेवाला परमेश्वर है। इसका (भ्राता) भाई (अर्थात् आत्मा) (मध्यमो) बीच में (अस्त्यश्न) बैठा है। (तृतीया) तीसरा (भ्राता) भाई (घृत) अन्य ज्ञान वीर्य का सेचन दान (पुष्टी) करनेवाला है। (विश्पतिं) पूर्ण में उपस्थित (सप्त पुत्रम्) सप्त पुत्र अर्थात् प्राणों के मालिक को (अस्य+अत्र+पश्यं) देख।

यहाँ एक तो परमात्मा का उल्लेख है। परमात्मा पूर्ण संसार को उत्पन्न करने, पालन करने और फिर अपने में समेट लेनेवाला है। उसका भाई है जो प्राणी में बैठा है। तीसरा भाई, शरीर (प्रकृति) है जो अन्न, ज्ञान, वीर्य का सेचन दान इत्यादि करता है। यह शरीर सात प्राणों का स्वामी है। इस सबको देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
1. ऋ० 1-164-1

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सूक्त में एक अन्य मन्त्र है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥[1]

दो सुन्दर पंखोंवाले, परस्पर साथ-साथ रहनेवाले, मित्र-भाव रखनेवाले पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हैं और उस पर सुख लाभ करते हैं। उनमें एक वृक्ष के स्वादयुक्त फलों का सेवन करता है। दूसरा सेवन नहीं करता, वह केवल देखता है।

यहाँ पक्षी परमात्मा और आत्मा के सूचक हैं। वे सुन्दर पंखोंवाले हैं। कारण यह है कि वे वृक्ष को छोड़कर उड़ भी सकते हैं। वृक्ष है शरीर अथवा संसार। इन दोनों (परमात्मा और आत्मा) में एक तो शरीर का अथवा संसार का भोग करता है और दूसरा नहीं करता। वह केवल देखता है।

ऋग्वेद के इस सूक्त के 52 मन्त्र परमात्मा, आत्मा और प्रकृति तीनों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में ही हैं। इन मन्त्रों में से दो ही ऊपर दिये हैं। इनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋषि जिन्होंने वेदमन्त्र कहे हैं, इस पूर्ण संसार में तीन मुख्य तत्त्व मानते थे। एक प्रकृति (matter) दूसरा आत्मा (soul) और तीसरा परमात्मा (God)। उपनिषदकार भी इसी प्रकार मानते थे। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवमुच्यते सर्वपाशैः॥
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥[2]

जगत् दो प्रकार का है। क्षर और अक्षर। (इसका अभिप्राय यह है

---

1. ऋ० 1-164-20
2. श्वे० 1-8, 9

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि प्रकृति के दो रूप हैं। एक नाशवान है और दूसरा जो नाश नहीं होता)। इनको व्यक्त तथा अव्यक्त रूप भी कहते हैं। ये दोनों रूप परमात्मा (देव) के आश्रय हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक निस्सहाय आत्मा है, वह (बध्यते) बँधा हुआ है (उक्त जगत् के क्षर और अक्षर रूप में)। कारण यह है कि इस आत्मा को (भोक्तृ भावा) प्रकृति के भोग करने की अभिलाषा रहती है। जब यह आत्मा परमात्मा (देव) को जान जाता है तब सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

दूसरे मन्त्र का भाव है—

ज्ञानवान और अज्ञानी क्रम से परमात्मा और जीव हैं। एक (प्रकृति) अजन्मा और है जो भोग करनेवाले (आत्मा) के भोग्यार्थ है। पूर्ण संसार में रहनेवाला परमात्मा तो अनन्त है। वह अकर्ता है। (अर्थात् प्रकृति का भोग नहीं करता।) जो तीनों को ब्रह्म (महान्) समझ जाता है तब—(क्या हो जाता है यह अगले दो मन्त्रों में कहा है।)—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥[2]

यह जानकर कि वह (परमात्मा) ही हमारे आपने में नित्य स्थित है और उससे बढ़कर अन्य कोई जानने योग्य पदार्थ नहीं। ऊपर बताए भोक्ता, भोग्य और प्रेरक ये तीन प्रकार के ब्रह्म मानने चाहिएँ।

इसी विषय को और भी स्पष्ट किया है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः॥
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥[2]

अर्थात् एक अजा (अनादि अनन्त) है जो त्रिगुणात्मक है। इसके

---

1. श्वे० 1-12
2. श्वे० 4-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण हैं (लोह, शुक्ल, कृष्ण) सत्व, रजस्, तमस् और वह अपने ही रूप (सत्त्व, रजस्, तमस्) वाली बहुत प्रजाओं (पदार्थों) का निर्माण करता है।

एक दूसरा अजन्मा (अनादि) है। वह उक्त अजा का भोग करता है। एक तीसरा अजा (अनादि) है जो पहले (अजा) का भोग नहीं करता।

वेद और उपनिषद् के इन प्रमाणों से ये बातें स्पष्ट होती हैं—

1. तीन (ब्रह्म) महान् पदार्थ अज (अनादि अनन्त) हैं—परमात्मा, आत्मा और प्रकृति;

2. प्रकृति के दो रूप हैं। क्षर और अक्षर। इनको व्यक्त और अव्यक्त भी कहते हैं। अक्षर रूप, प्रकृति का आदि तथा मूल रूप है;

3. आत्मा तो प्रकृति का भोग करता है और परमात्मा इससे विरक्त रहता है;

4. परमात्मा ज्ञानवान है। आत्मा अज्ञ अर्थात् ज्ञानहीन है।

यह है भारतीय दर्शनशास्त्र का सार। यहाँ इतना कह देना चाहिए कि कुछ आचार्य ऐसा विचार रखते हैं कि आत्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं। आत्मा किसी कारण से भ्रमित हुआ परमात्मा ही है। प्रकृति भिन्न है। ऐसा मानने वाले भी द्वैतवादी कहाते हैं। कुछ आचार्य ऐसे भी हैं जो इन तीनों (परमात्मा, आत्मा तथा प्रकृति) को एक ही मानते हैं। प्रकृति को परमात्मा की शक्तिमात्र (माया) मानते हैं और जब परमात्मा अपनी माया में फँसकर भ्रमित हो जाता है तो इसको आत्मा का नाम दिया जाता है। इस प्रकार माननेवालों को अद्वैतवादी कहते हैं।

द्वैतवादी और अद्वैतवादी बहुत युक्तियाँ देते हैं और कई उपनिषदों के प्रमाण भी देते हैं। हम समझते हैं कि इन दोनों वादों को इतना स्पष्ट समर्थन वेदशास्त्रों का प्राप्त नहीं है जितना त्रैतवादियों को उपलब्ध है।

मन्त्र का पदच्छेद इस प्रकार है—

अजाम्—एकां—लोहित—शुक्ल—कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां—सरूपाः।

अजा—हि—एका जुषमाणा—अनुशेते—जहाति—एनाम्—मुक्त—

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगाम्—अजो—अन्यः।

इसका अर्थ स्पष्ट है। एक अजन्मा है। वह लोहित शुक्ल कृष्ण गुणवाला है। वह अपने ही रूप में बहुत प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करता है। एक और अजन्मा है जो इसके भोग का स्वाद लेता है। एक और अजन्मा है जो इसका भोग नहीं करता।

कपिल ने अपने सांख्य-दर्शन में यह स्पष्ट लिखा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः[1]

प्रकृति सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था का नाम है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी यह लिखा है कि प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् गुणवाली त्रिगुणात्मक है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥[2]

इस संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। नाशवान् हैं सब भूत (प्राणी के शरीर) और उनमें ठहरा हुआ आत्मा अक्षर है।

उत्तम पुरुष तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश कर उनका पोषण करता है। वह भी अविनाशी है। उसको ईश्वर तथा परमात्मा कहा गया है। अतः यह स्पष्ट है कि—

1. तीन अनादि पदार्थ हैं—प्रकृति (matter), जीव (soul) और परमात्मा (God)।

2. प्रकृति (matter) तीन गुणवाली है। सत्त्व, रजस्, तमस्। आदि रूप में ये तीनों गुण समता की (balanced) अवस्था में होते हैं। यह समता की अवस्था बिगड़ती है तो प्रकृति में परिवर्तन होने लगता है और

---

1. सांख्य० 1-61
2. भ० गी० 15-16, 17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर नाना प्रकार की वस्तुएँ बन जाती हैं। यह समता की अवस्था का भंग होना परमात्मा के कारण है।

3. जीवात्मा प्राणियों में उपस्थित चेतन तत्त्व है। यह प्रकृति का भोग करता है और उसका रस लेता है। जब यह किसी शरीर में आता है तो शरीर को चेतना प्रदान करता है और शरीर में व्यापक रहता है।

4. परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक चेतन तत्त्व है। वह जगत् का निमित्त कारण है। वह जगत् का पालनकर्त्ता है और इसको प्रलय के समय नष्ट करता है।

5. प्रकृति आदि रूप में (primordial matter) अनादि है। इसको अक्षर माना है। इस रूप में इसको अव्यक्त कहते हैं। यह रूप सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था के कारण होता है। ईश्वरेच्छा से अथवा जगत् के किसी अटल नियमानुसार यह साम्यावस्था भंग होती है तो प्रकृति में परिवर्तन होने लगते हैं। इनके विषय में सांख्य-दर्शन में लिखा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं, तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशितर्गणः।[1]

सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था में यह प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से (तीन) अहंकार, अहंकारों से तन्मात्रा, तन्मात्राओं से पाँच-पाँच (दस) इन्द्रियाँ, तन्मात्राओं से ही (पाँच) स्थूल भूत और पुरुष—ये पच्चीस गण कहाते हैं।

6. स्थूल भूतों को पंच महाभूत भी कहते हैं। इनसे ही पूर्ण जगत् के जड़ पदार्थ, प्राणी का शरीर भी बनता है। इन्द्रियाँ उस शक्ति का नाम है जिनसे मनुष्य कार्य करता है और ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं। कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ।

7. इन इन्द्रियों के अतिरिक्त प्रकृति का प्रथम गण महत् है। यह

---

1. सांख्य द० 1।61

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी में बुद्धि और मन कहाता है।

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः।[1]

प्रकृति का प्रथम गण 'महत्' कार्य करता है तो मन कहाता है।

8. इस सब-कुछ के होने पर भी पुरुष (आत्मा) इनसे पृथक् है। इस विषय में सांख्यदर्शन लिखता है—

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य।[2]

प्रकृति में यह परिवर्तन व्यर्थ (अकारण) नहीं होते। ये सब पुरुष (आत्मा) के लिए होते हैं।

9. इन पच्चीस गणों [एक महत्, तीन अहंकार, पाँच तन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत, एक पुरुष (आत्मा] के अतिरिक्त एक उत्तम पुरुष (परमात्मा) है, जो पूर्ण जगत् में व्यापक इसका भरण-पोषण करनेवाला और प्रलयकाल में सबको पुनः प्रथम अवस्था में ले आनेवाला है। इसको परमात्मा, ईश्वर इत्यादि नामों से स्मरण किया जाता है।

इसमें ध्यान रखने योग्य बात यह है कि भारतीय दर्शन में आत्मतत्त्व दो माने गए हैं। एक आत्मा और दूसरा परमात्मा। दोनों पृथक्-पृथक् हैं।

यह तो हुआ शास्त्र का प्रमाण। इसमें युक्ति भी है। यह युक्ति सुश्रुताचार्य ने इस प्रकार दी है—

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च; असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येवपुरुषख्यापकान्हेतूनुदाहरन्ति।

आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च, तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु संचरन्ति धर्माधर्मनिमित्तम्।[3]

आयुर्वेद शास्त्र में क्षेत्रज्ञों (जीवात्माओं) को सर्वव्यापक नहीं मान सकते। हाँ, उनको नित्य (अनादि) मानते हैं। असर्वगत (न सर्वव्यापक)

---

1. वही 1-71
2. सांख्य द०1-66
3. सुश्रुत-शा० 1-17, 18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों को नित्य तथा (एक शरीर में) व्यापक लक्षणों से देखते हैं।

ये जीव नित्य हैं। यह धर्म-अधर्म के कारण तिर्यग् योनि (पशु-पक्षी इत्यादि) तथा मनुष्य देह अथवा देव देह में विचरते हैं।

इसमें आयुर्वेद शास्त्र की युक्ति यह है कि प्राणी सुख-दुःख के विचार से बढ़िया और घटिया शरीर पाते हैं। यदि सबका आत्मा एक होता तो यह भेद-भाव क्यों? निःसन्देह एक प्राणी का जीव दूसरे प्राणी से भिन्न है।

साथ ही यदि सबमें जीव एक होता तो एक के रुग्ण तथा दुःखी होने से सब रुग्ण तथा दुःखी होते। एक के सुखी होने से सब सुखी होते।

इसमें अद्वैतवादी यह कहते हैं कि सुख-दुःख आत्मा को नहीं होता। यह मन को होता है।

इस युक्ति का उत्तर द्वैतवादी यह देते हैं कि मन (महत्) प्रकृति का एक गण होने से स्वयमेव चेतन नहीं हो सकता। चेतना प्रकृति का गुण नहीं है। यह गुण इसमें आत्मतत्त्व के कारण है और सुख-दुःख अनुभव करना चेतना का गुण है, जड़ तत्त्व का नहीं। यदि यह है तो आत्मतत्त्व भिन्न-भिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न मानने ही होंगे।

इसमें युक्ति यह है कि न जड़ चेतन हो सकता है न चेतन जड़ हो सकता है। जड़ जड़ है और चेतन चेतन। जब जहाँ चेतन जड़ से युक्त होता है, जड़ में चेतना दिखाई देती है। ज्योंही चेतन जड़ से पृथक् होता है, जड़-जड़ रह जाता है, चेतना उससे पृथक् हो जाती है।

भगवद्गीता में इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत॥[1]

यह देह अन्त वाली है। इसमें शरीर का स्वामी आत्मा अमर है। यह नाशरहित है और अप्रमेय (विकार रहित) है।

---

1. भ० गी० 2.18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि आत्मा और देह पृथक्-पृथक् हैं तो दुःख किसको होता है ? पुण्य अथवा पाप तो देह करती है। इस कारण सुख-दुःख भी देह को होना चाहिए।

इसका उत्तर यह है कि शरीर तो एक प्रकार का यंत्र है। यंत्र से काम करनेवाला ही यन्त्र के कामों का उत्तरदायी होगा। यदि तो यन्त्र बिना चालक के चल सकता तो भले-बुरे का उत्तरदायी यन्त्र होता। उदाहरण के रूप में एक मोटरगाड़ी है। उसमें इंजन भी लगा है। पेट्रोल भी उपस्थित है। उसमें 'स्टार्टर' भी लगा है और बैटरी भी उपस्थित है, परन्तु जब तक चालक स्टार्टर से बैटरी का सम्बन्ध जोड़कर इंजन को चलाता नहीं, मोटर चलती नहीं। साथ ही वह मोटर किधर जाएगी और किसी को नीचे कुचल देगी अथवा साफ मार्ग पर बिना किसी को हानि पहुँचाए चलेगी, चालक पर निर्भर है।

इसी प्रकार यह शरीर है। इसमें मन व इन्द्रियाँ उपस्थित हैं। इन्द्रियों में शक्ति भी है, परन्तु जब तक इन इन्द्रियों और मन से काम लेनेवाला आत्मा मन को इन्द्रियों से जोड़कर शरीररूपी मशीन को चलाता नहीं, तब तक यह शरीर भला अथवा बुरा कोई काम नहीं करता। जब इसका चालक (आत्मा) इससे धर्म कार्य करता है, अथवा अधर्म कार्य करता है, तो यह फल, पुण्य अथवा पाप को पाता है।

अतः युक्ति से भी यही सिद्ध होता है कि शरीर में मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं। आत्मा शरीर का स्वामी है और चालक है। वह मनरूपी इंजन को स्टार्ट कर शरीर से काम कराता है। अतः शरीर के कामों का कि वे धर्मानुकूल हैं अथवा अधर्मानुकूल, वह ही उत्तरदायी है। आत्मा के पास एक बुद्धि नाम का यन्त्र भी है। यह मोटर का स्टीयरिंग व्हील कहा जा सकता है। इससे मोटर ठीक अथवा गलत मार्ग पर जाती है।

इसको उपनिषद् में भी इसी प्रकार बताया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाःस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥[1]

अर्थात् आत्मा रथ का स्वामी है। शरीर रथ है। मन लगाम है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। विषय मार्ग हैं जिन पर घोड़े रथ को ले जा रहे हैं और इसका फल भोगनेवाला शरीर, मन और आत्मा समूचा प्राणी है।

अभिप्राय यह है कि रथ के मिथ्या मार्ग पर चलने पर दुर्घटना में रथ (शरीर) टूटेगा, घोड़े (इन्द्रियाँ) मरेंगे और आत्मा को दुःख होगा।

इसी को गीता में इस प्रकार कहा गया है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्धवा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥[2]

इन्द्रियों को सूक्ष्म, बलवान् तथा श्रेष्ठ जान। इन्द्रियों से बलवान् मन है। मन से ऊपर बुद्धि है और बुद्धि से ऊपर आत्मा है।

इसलिए मनुष्य के परम शत्रु काम को जीतने के लिए पहले आत्मा को जानकर बुद्धि को और मन को आत्मा के नियन्त्रण में करना चाहिए।

अतः युक्ति से भी यही सिद्ध होता है कि प्राणी में आत्मा परमात्मा से भिन्न है। इस आत्मा से मन और इन्द्रियों को वश में करके संसार में विचरना चाहिए।

परमात्मा नाम का आत्मतत्त्व तो सर्वव्यापक है और एक रस, ज्ञानवान्, शक्तिवान् इत्यादि गुणों को रखने के कारण अज्ञानी, सीमित शक्ति और सीमित प्रभाववाले आत्मा से भिन्न है।

---

1. कठो० 1-3-3, 4
1. भ० गी० 3-42, 43

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

मनुष्य और कर्म-अकर्म

इस भू-मण्डल पर प्राणियों को ऐसा शरीर मिला है, जिसके पालन के लिए निम्न वस्तुओं की आवश्यकता रहती है—

1. वायु, 2. जल, 3. भोजन, 4. विशेष अवस्था में यौनतृप्ति।

ये आवश्यकताएँ सब प्राणियों के लिए हैं। यदि ये सब अनायास पूर्ण हो जाएँ तो प्राणी को कर्म करने की आवश्यकता न रहे। सब प्राणी इनको अनायास प्राप्त नहीं कर सकते। वायु का भण्डार तो इस पृथ्वी पर इतना है कि प्राणी को इसे प्राप्त करने के लिए न्यूनातिन्यून प्रयत्न करना पड़ता है। इस पर भी यह भी बिना प्रयत्न के प्राप्त नहीं होती। अभिप्राय यह कि श्वास लेना और फिर श्वास निकालना ये कर्म करने ही पड़ते हैं। इसके लिए बहुत कम प्रयास करना पड़ता है। प्रतिक्षण प्राणी को यह प्रयास करते-करते इतना अभ्यास हो जाता है कि वह उनका अनुभव करना भी छोड़ देता है। इस पर भी श्वास लेने और छोड़ने में प्राणी को परिश्रम करना ही पड़ता है।

जल के लिए अधिक यत्न करना पड़ता है। भोजन के लिए उससे अधिक और यौन-तृप्ति के लिए विशेष यत्न करना पड़ता है। इसमें कारण है। भोज्य पदार्थों की उपलब्धि वायु और जल की अपेक्षा कम है। यौन-तृप्ति में उपलब्धि की कमी के अतिरिक्त एक अन्य बाधा भी है। वह है इस कार्य के लिए किसी दूसरे प्राणी की सहायता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह है कि जहाँ तक वायु, जल और भोज्य-पदार्थों का सम्बन्ध है, केवल आवश्यक मात्रा में उपलब्धि ही एक बात है, जिस पर प्रयत्न की मात्रा निर्भर करती है, परन्तु यौन-तृप्ति के लिए इस कार्य में साथी की रुचि और आवश्यकता भी एक आधार है जिस पर प्रयत्न की मात्रा निर्भर करती है।

यदि तो आवश्यक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों तब तो कुछ अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। इस पर भी कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना ही पड़ता है। यही कर्म है।

आरम्भ में भूमि उर्वरा थी। और फल कन्द-मूल, जो खाये जा सकते थे, पर्याप्त मात्रा में अनायास ही मिल जाते थे। उस काल की सृष्टि के विषय में महाभारत में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥
पाल्यमानास्तथान्योन्यं नरा धर्मेण भारत।
खेदं परमुपाजग्मुस्ततस्तान् मोह आविशत्॥[1]

पहले न कोई राजा था, न राज्य; न दण्ड था न दण्ड देनेवाला। समस्त प्रजा धर्म द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करती थी।

तब मनुष्य धर्म के द्वारा परस्पर पालित और पोषित थे। पीछे इस परस्पर के संरक्षण में कष्ट अनुभव होने लगा। तब सब ओर मोह छा गया।

यह मोह क्यों छा गया? इसमें दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि जनसंख्या बढ़ गई होगी और पृथ्वी की उपज बढ़ी नहीं होगी। दूसरे यह कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं में वृद्धि कर ली होगी। वायु, जल, भोजन और यौन-तृप्ति के अतिरिक्त कुछ ऐसे आवश्यक पदार्थों की आवश्यकता बना ली होगी जिसके लिए और भी अधिक परिश्रम की आवश्यकता रही होगी। उदाहरण के रूप में, मनुष्य ने मकान निर्माण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
1. म० भा० शा० 59-14, 15

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य आरम्भ कर दिया होगा। मकान बनाने के लिए उपयुक्त परिश्रम सब नहीं कर सकते। अतएव कुछ ने मकान निर्माण कर लिये होंगे, कुछ ने नहीं। जिन्होंने मकान नहीं बनाया होगा वे भी मकान की लालसा करने लगे होंगे। अत: वे बिना निर्माण किए छीना-झपटी से ही इसे प्राप्त करने का यत्न करने लगे होंगे। यह कारण हो सकता है मोह का। इसी प्रकार अन्य अनेकों आवश्यक एवं अनावश्यक पदार्थों के विषय में बात हो सकती है।

सिद्धान्त से मोह में फँसने का कारण यह है कि कामना की उत्पत्ति और उसकी पूर्ति के लिए परिश्रम की आवश्यकता; परिश्रम करने की क्षमता का सबमें समान न होना और तब बिना परिश्रम के प्राप्त करने की लालसा रखना।

Gurukul Kangri (Deemed to be Univ...y) Haridwar 167959

नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या: प्रजास्तदा।
लोभस्य वशमापन्ना: सर्वे भरतसत्तम॥
अप्राप्तस्याभिमर्शं तु कुर्वन्तो मनुजास्तत:।
कामो नामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो॥
तांस्तु कामवशं प्राप्तान् रागो नाम समस्पृशत्।
रक्ताश्च नाभ्यजानन्त कार्याकार्ये युधिष्ठिर॥
अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं तथैव च।
भक्ष्याभक्ष्यं च राजेन्द्र दोषादोषं च नात्यजन्॥[1]

तब मनुष्यों में कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नष्ट हो गया और मनुष्य लोभ के अधीन हो गए। जो वस्तु उनको प्राप्त नहीं थी, वह वस्तु वे पाने का यत्न करने लगे। इसे पाने की लालसा को ही 'काम' कहते हैं।

काम के अधीन मनुष्यों में राग उत्पन्न हुआ और वे कर्तव्य और अकर्तव्य में भेद भूल गए। तब उन्होंने अगम्यागमन, वाच्यावाच्य, भक्ष्याभक्ष्य तथा दोषादोष कुछ भी नहीं छोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

1. महाभारत, शां० 59-17, 20

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अव्यवस्था उत्पन्न हो गई।

इतना तो सब दार्शनिक मानते हैं कि जब इच्छित पदार्थ प्राप्त नहीं हुए तो उनके लिए छीना-झपटी आरम्भ हुई। भारतीय विचारधारा इतना मानती है कि आरम्भ में मनुष्य धर्म-परायण थे, अर्थात् जो कुछ उनका अपना था, वही वे भोग करते थे।

यहाँ अपने का अभिप्राय समझ लेना चाहिए। हम ऊपर लिख आये हैं कि वायु के अतिरिक्त अन्य सब-कुछ प्राप्त करने के लिए परिश्रम करना पड़ता है। किसी की प्राप्ति में कम परिश्रम की आवश्यकता रहती है, और किसी की प्राप्ति में अधिक परिश्रम की। अत: जो वस्तु जिस मनुष्य ने परिश्रम से प्राप्त की, वह उसकी अपनी हो गई।

कठिनाई तब उपस्थित हुई जब आवश्यक तथा अनावश्यक पदार्थ माँग से कम रहने लगे और उनके प्राप्त करने में परिश्रम अधिक और अधिक करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। तब जो उचित परिश्रम नहीं कर सकते थे अथवा नहीं करना चाहते थे, वे बलपूर्वक तथा छलपूर्वक दूसरे के पदार्थों को छीनकर भोग करने लगे।

आरम्भ में धर्माचरण की प्रवृत्ति ऋषियों द्वारा ज्ञान प्रसार के कारण थी। इस ज्ञान को काम और राग ने आच्छादित कर दिया तो अधर्माचरण का व्यवहार चलने लगा।

यही व्यवहार सब जीव-जन्तुओं में चलता है। जंगल में पशु भोजन और यौन-तृप्ति के लिए लड़ते-झगड़ते देखे जाते हैं। उनमें भी लड़ाई-झगड़े का कारण वही है। जब आवश्यकता के पदार्थ कम हो जाते हैं अथवा जब जीव अपनी आवश्यकताएँ बढ़ा लेते हैं तो वस्तुओं का अभाव होता है और कुछ जीव दूसरे के परिश्रम से प्राप्त वस्तु स्वयं बिना परिश्रम के लेने की लालसा करने लगते हैं।

एक बात का इतर जीव-जन्तुओं में और मनुष्यों में अन्तर है। इतर जीव-जन्तु अपनी आवश्यकताएँ बढ़ा नहीं सकते। वे जो कुछ स्वभाववश खाते-पीते हैं वही वे लेने की इच्छा करते हैं; परन्तु मनुष्य में तो नये-नये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के भोग-निर्माण करने की शक्ति होती है और फिर उन भोगों को प्राप्त करने की लालसा बन जाती है। इस कारण यह स्वाभाविक ही है कि मनुष्यों में झगड़े-फसाद इतर जीव-जन्तुओं से अधिक हों।

पशु तो, जब पेट भर गया, शान्त हो जाते हैं। परन्तु मनुष्य में पेट भरने के अतिरिक्त अन्य लालसाएँ और आकांक्षाएँ बनी रहती हैं और उनकी पूर्ति के उपाय भी मनुष्य आविष्कार करता रहता है। यह सब मनुष्य में बुद्धि के कारण है।

इस पर भी झगड़ों का मूल कारण वही है जो पशुओं में उपस्थित होता है। जब जीव वह प्राप्त करना चाहता है जो उसका अपना नहीं, तब झगड़ा होता है और अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

अभिप्राय यह है कि प्राणी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कर्म करता है। जब कर्म के बिना आवश्यकताओं की पूर्ति का यत्न किया जाता है तो झगड़े-फसाद, छीना-झपटी, धोखाधड़ी होती है। यह अकर्म कहाता है।

कर्म और अकर्म के चक्कर में सब प्राणी ग्रस्त हैं। पशु इत्यादि इतर जीव-जन्तु भी और मनुष्य भी; परन्तु मनुष्य और पशु में अन्तर को नीतिकार इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिः नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो
धर्मेणः हीनाः पशुभिः समाना॥

खाना, सोना, डरना और मैथुन ये पशु और मनुष्य में समान रूप में उपस्थित हैं। मनुष्य में धर्म की भावना अधिक है। जब उसमें धर्म नहीं रहता तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

यह धर्म क्या है? इसका वर्णन उचित स्थान पर करेंगे। यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि मनुष्य ने, बुद्धि रखने के कारण, काम तथा राग से उत्पन्न उक्त अवस्था से निकलने का प्रयत्न किया और उसने कुछ नियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाए, जिनको धर्मान्तर्गत समझा गया।

इस विषय में भी महाभारत में एक बात बताई है। जब घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो गई तो भले लोग परमात्मा की शरण में गए अर्थात् वे परमात्मा का चिन्तन कर विचार करने लगे कि इस अधर्माचरण की अवस्था से निकलने का क्या उपाय करें।

तानुवाच सुरान् सर्वान् स्वयम्भूर्भगवांस्ततः।
श्रेयोऽहं चिन्तयिष्यामि व्येतु वो भीः सुरर्षभाः॥
ततोऽध्यायसहस्त्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम्।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः॥[1]

मानवों में अव्यवस्था देख भले पुरुषों ने परमात्मा का चिन्तन किया तो परमात्मा ने उनको मार्ग बताया। परमात्मा ने कहा, हे श्रेष्ठगण, तुम्हारे भय को दूर करने का उपाय बताता हूँ।

यह हुआ नीतिशास्त्र का निर्माण। इस नीतिशास्त्र में अनेकों विषयों पर विवेचना की गई। सब विषयों की विवेचना का प्रयोजन तीन प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करना था। धर्म, अर्थ तथा काम। इसी कारण इस नीतिशास्त्र का नाम त्रिवर्गशास्त्र पड़ गया।

इस नीतिशास्त्र में मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन नहीं किया गया। इसको पृथक् रखा गया। कारण यह कि मोक्ष का विषय पृथक् है और इसके गुण और प्रभाव भी दूसरे हैं।

इस सबका अभिप्राय यह है कि मनुष्य ने अव्यवस्था देख नीतिशास्त्र का निर्माण किया और उस नीतिशास्त्र में धर्म, अर्थ और काम की विवेचना की गई।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि उस काल में भी विद्वानों और भले

---

1. म० भा०, शां० 59-28, 29, 30

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों का यह मत था कि मोक्ष-प्राप्ति का विषय लोक-नीति का विषय नहीं है। यह धर्म, अर्थ और काम से पृथक् है। वास्तव में नीतिशास्त्र उन विषयों पर विवेचना करता है जो सीधे रूप में अथवा घूम-घामकर मनुष्य के मनुष्य से व्यवहार के हैं। मोक्ष-प्राप्ति एक व्यक्ति का केवल अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाला विषय है। इस कारण इसको नीतिशास्त्रान्तर्गत नहीं रखा गया। मोक्ष मज़हब, रिलिजन, मत, पंथ इत्यादि का विषय है। इसी कारण इसको लोक-नीति से पृथक् रखा जाना ठीक समझा गया।

धर्म मनुष्य-मनुष्य में सम्बन्ध रखनेवाला विषय माना गया है। यह बात धर्म के प्रकरण में और अधिक स्पष्ट करेंगे।

हमने यह लिखा है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए परिश्रम करता है। परिश्रम को ही कर्म कहते हैं।

साधारण आवश्यकताएँ हैं—वायु, जल, भोजन, गरमी-सर्दी से बचना तथा यौन-तृप्ति।

हमने यह भी बताया है कि ये सब आवश्यकताएँ पशु और मनुष्य में समान रूप से उपस्थित होती हैं और सब प्राणी उनकी पूर्ति में समान रूप से प्रयत्न करते हैं।

मनुष्य में एक विशेषता है। वह यह कि इसमें बुद्धि भी है। यह बुद्धि विकास की क्षमता रखती है। यह बुद्धि जहाँ मनुष्य में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का उपाय बताती है, वहाँ यह मनुष्य की आवश्यकताओं में वृद्धि भी करती है। फिर इन बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति में साधन भी जुटाती है।

अभिप्राय यह कि मनुष्य में अपने कर्म का क्षेत्र बढ़ाने की क्षमता रहती है। यह क्षमता बुद्धि के कारण है।

कभी बुद्धि का विकास उस गति से नहीं हो पाता, जिससे काम और राग उत्पन्न होता है। तब मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य, भक्ष्याभक्ष्य, अगम्यागमन, वाच्यावाच्य तथा दोष-अदोष में भेद नहीं कर पाता। तब वह अकर्म करने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकर्म उस कर्म को कहा जाता है जो करना उचित नहीं। मूल रूप में जो अपना नहीं, उसे अपना बनाए बिना प्राप्त करने के प्रयत्न को अकर्म कहते हैं। अपना वह है जिसको प्राप्त करने के लिए परिश्रम किया गया हो।

अत: परिश्रम, अपना-पराया, उचित-अनुचित उपाय इत्यादि पर विवेचना को नीतिशास्त्र कहते हैं।

यह है कर्म-अकर्म की विवेचना। यूँ तो मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रयास को भी कर्म कहते हैं, परन्तु मोक्ष-प्राप्ति एक व्यक्ति का अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाला विषय है। इस कारण इसको नीतिशास्त्र से बाहर रखा है। नीतिशास्त्र में तो केवल उन विषयों पर ही विवेचना की गई है, जिनमें मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध पड़ता है।

मोक्ष का विषय केवल मज़हब से सम्बन्ध रखता है। कुछ पंथों के प्रवर्तकों ने अपने पंथ को लोकप्रिय बनाने के लिए यत्र-तत्र नीति शास्त्र की बातें भी इसमें सम्मिलित कर ली हैं। इससे उनमें भी मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्ध के विषयों पर उल्लेख आता है। परिणाम यह हो रहा है कि नीतिशास्त्र का हस्तक्षेप मज़हबों में अनिवार्य हो गया है। यह एक अवांछनीय स्थिति है। इसका निराकरण तब ही हो सकता है जब मज़हबों के लोग नीतिशास्त्र की बातों को मोक्ष-प्राप्ति की बातों से पृथक् रखें।

मोक्ष-प्राप्ति केवल मनुष्य की आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाली बात है। आत्मा के सांसारिक बन्धनों से छूट जाने को मोक्ष कहते हैं। इस निमित्त पूजा-पाठ, योग-ध्यान, समाधि इत्यादि उपाय हैं। इनमें से किसी के लिए भी एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता नहीं। अत: मज़हबों को इन्हीं बातों तक सीमित रखा जाए तो फिर नीति के संचालकों को मज़हबों में हस्तक्षेप से दूर रखा जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मज़हब और नीति-व्यवस्था भिन्न-भिन्न हैं। मज़हब का नीति में हस्तक्षेप अकर्म है और नीतिशास्त्र का मज़हबों में हस्तक्षेप अकर्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। इसलाम में दारा-उल-हरब को दारा-उल-इसलाम बनाना सबाब (पुण्य कार्य करना) माना गया है। दारा-उल-हरब का अभिप्राय है गैर-इसलामी देश और दारा-उल-इसलाम का मतलब उस देश से है जहाँ का शासक मुसलमान हो।

देश में रहनेवालों का इसलाम को मानना अथवा ईसाई मत को मानना व्यक्ति के अपने विचार का विषय है। इसके लिए बौद्धिक प्रयत्न तो हो सकते हैं, परन्तु इसलाम ने इस सबाब (पुण्य) के काम को करने के लिए जंग, विप्लव, हत्याएँ, क्रान्तियाँ और अनेक प्रकार के अधर्माचरण किये हैं। यह इसलाम का एक अनुचित हस्तक्षेप है। नीतिशास्त्र के क्षेत्र में यह अकर्म है। इसको रोकने के लिए नीतिसंचालकों को इसलाम में हस्तक्षेप करना पड़ता है। इस हस्तक्षेप से बचने के लिए इसलाम को अपने इस सिद्धान्त को छोड़ना होगा। नीति-संचालकों को भी इस सिद्धान्त को इसलाम से बहिष्कृत कराने तक ही हस्तक्षेप करना चाहिए।

इसका अभिप्राय यह भी निकलता है कि नीति-संचालक भी यदि मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं तो वे भी अकर्म करते हैं।

विस्मयजनक बात यह है कि महाभारत का लेखक और यदि उसके कथन को सत्य मानें तो आदि काल में भी विद्वान् लोग परमात्मा की कृपा से यह बात समझ गए थे कि कर्म और अकर्म क्या है और सबसे प्रथम उन्होंने नीतिशास्त्र से मोक्ष-प्राप्ति को पृथक् रखा था। नीतिशास्त्र का मनुष्य की प्रवृत्ति में हस्तक्षेप अकर्म माना गया था। यदि यह कहा जाए कि सैक्युलर राज्य की रूप-रेखा उनके मस्तिष्क में थी तो ठीक होगा। सैक्युलर का अर्थ है कि राज्य अर्थात् नीति-संचालक मज़हबी विषयों में हस्तक्षेप न करें। हम मज़हबी विषय केवल उनको मानते हैं जो मनुष्यों के आत्म-अभ्युदय से संबन्ध रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

धर्म

पिछले अध्याय में यह वर्णन किया गया है कि मानवों ने अपने राग और काम से उत्पन्न अव्यवस्था को दूर करने के हेतु नीतिशास्त्र का आविष्कार किया। इस नीतिशास्त्र के तीन मुख्य लक्ष्य हैं। धर्म की स्थापना, अर्थ की प्राप्ति तथा काम की पूर्ति।

हम धर्म के विषय में ही पहले लिखते हैं—

धर्मो राजन् गुणः श्रेष्ठो मध्यमो ह्यर्थ उच्यते।
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिणः॥[1]

(हे राजन्! धर्म गुणों में श्रेष्ठ है। अर्थ मध्यम है और काम को सबसे हीन समझो।)

इसका अभिप्राय यह है कि अर्थ की प्राप्ति में और कामनाओं की पूर्ति में धर्म का पालन सर्वत्र होना चाहिए और कामनाएँ तो बिना अर्थ के पूर्ण होती ही नहीं।

धर्म की व्याख्या नीतिशास्त्र में बहुत विस्तार से की गई है। धर्म करने योग्य कर्म को कहते हैं। करने योग्य कर्म दो प्रकार के हैं—

स्थायी अर्थात् शाश्वत धर्म एवं अस्थायी अर्थात् परिवर्तनशील धर्म। शाश्वत धर्मों को सनातन धर्म भी कहते हैं।

स्थायी अपरिवर्तनशील धर्मों के विषय में मनुस्मृति में लिखा है—

---

1. महाभारत, शां० 167/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

यह सनातन धर्म की व्याख्या है जो समस्त समाज के और प्रत्येक आयु के प्रत्येक घटक के लिए व्यवहार में लाने के लिए है।

धर्म हैं—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धीः, विद्या सत्य तथा अक्रोध।

ये धर्म ऐसे हैं जो सर्वत्र, सदा और सबके पालन करने योग्य माने गये हैं। इनकी अवहेलना कभी भी नहीं की जानी चाहिए।

इसके अतिरिक्त देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार भी मनुष्य के लिए कुछ कर्म करणीय होते हैं। वे देश, काल आदि के परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। समाज के धर्मशास्त्री इनमें समयानुसार परिवर्तन करते रहते हैं।

एक बात ध्यान रखने योग्य है कि ये परिवर्तनशील धर्म कभी भी स्थायी धर्मों का विरोध नहीं कर सकते। उदाहरण के रूप में, वर्तमान काल की प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के देशों में संसद अथवा विधान सभाएँ मनुष्य के आचरण के लिए नियम आदि (कानून) बनाती हैं। परन्तु उक्त नीतिशास्त्र के अनुसार कोई भी धर्मशास्त्री, संसद अथवा राजा ऐसे नियम (कानून) न बनाए जो उक्त स्थायी धर्मों का उल्लंघन करें, विरोध करें अथवा विरोध की स्थिति उत्पन्न कर सकें।

एक उदाहरण लें तो बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। आज भारत में सन्तान-निग्रह का आन्दोलन चल रहा है। इसके लिए कई प्रकार के कृत्रिम उपकरण प्रयोग में लाने का प्रचार किया जा रहा है। जहाँ तक परिवार-नियोजन का प्रश्न है यह वांछनीय हो सकता है। परन्तु जहाँ तक इसके उपायों का सम्बन्ध है, उस पर विचार करने की आवश्यकता है। शाश्वत धर्मों में एक धर्म है इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् संयम। ऐसा देखा गया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार-नियोजन के लिए कृत्रिम उपायों से संयम में ह्रास हो रहा है। अत: संतान-निग्रह के ये उपाय शाश्वत धर्म (इन्द्रिय-निग्रह) के विरोध में आ रहे हैं। ये उपाय धर्म-व्यवस्था के विपरीत हैं।

यद्यपि सन्तान-निग्रह सामयिक परिस्थितियों में धर्म हो सकता है, परन्तु उसके लिए कृत्रिम उपाय एक स्थायी धर्म के विरोधी हो जाने से अधर्म के रूप में हो जाएँगे।

अभी तो सन्तान-निग्रह एक आन्दोलन के रूप में ही चल रहा है। इसने अभी नियम का रूप नहीं लिया। यह स्वेच्छा से पालन करने के योग्य बताया जा रहा है। इस कारण इसको अभी तक एक अधर्म का विस्तार करनेवाला आन्दोलन ही कहेंगे। यह संभव है कि ऐसा अवसर आ जाए, जब भारत की संसद यह नियम बना दे कि तीन से अधिक संतान उत्पन्न करना दण्डनीय है और जिनके घर में तीन सन्तानें उत्पन्न हो जाएँ वे उन कृत्रिम उपकरणों का प्रयोग करें जिससे सन्तान न हो। तब यह कानून संसद में सर्व-सम्मति से स्वीकार होने पर भी अधर्म होगा।

इस प्रकार प्राचीन नीतिशास्त्र के अनुसार धर्म के दो भाग किये गए हैं। स्थायी धर्म और अस्थायी धर्म। स्थायी धर्म सर्वत्र, सदैव और सब अवस्थाओं में पालन करने के लिए हैं। अस्थाई धर्म काल, आयु, देश और अवस्था के अनुसार निश्चय किये जाते हैं। इसमें बन्धन यह है कि ये अस्थायी धर्म स्थायी धर्मों का विरोध न करें।

वास्तव में राज्यों में धर्मशास्त्री (law givers) भले ही वे सर्वसम्मति से नियुक्त किये गए हों, स्थायी धर्मों का विरोध नहीं कर सकते। आज भी संसद, विधान सभा अथवा कोई भी व्यक्ति जो इन अस्थायी धर्मों (कानून) की व्यवस्था करनेवाला हो, वह उक्त स्थायी धर्मों का विरोध नहीं कर सकता। यह एक अटल नियम है।

स्थायी धर्म भी दो प्रकार के हैं। उक्त दस धर्मों में धृति:, दम, शौच, धी:, विद्या, ये पाँच, बहुत सीमा तक व्यक्तिगत धर्म हैं। इनका मुख्य सम्बन्ध कर्ता के अपने साथ ही है। यह नहीं कि इनके पालन करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव समाज पर होता ही न हो। इस पर भी ये मुख्यत: कर्ता के साथ ही सम्बन्ध रखते हैं।

उदाहरणस्वरूप, विपद्काल में धैर्य धारण, पालनकर्ता के साथ सम्बन्ध रखता है, परन्तु यदि यह विपदा की अवस्था किसी राजा अथवा समाज के उच्चाधिकारी की हो तो उस अवस्था में धैर्य का न पालन करना कर्ता के अतिरिक्त मनुष्यों पर भी प्रभाव उत्पन्न करनेवाला हो सकता है। इस पर भी साधारण स्थिति में धृति धर्म व्यक्ति के निज के लिए ही है। यह व्यक्तिगत (personal) धर्म है।

इसी प्रकार शौच है। शौच का अभिप्राय शरीर, मन एवं बुद्धि को पवित्र रखना है। यह पवित्रता रखना कर्ता के अपने लाभ के लिए ही है। इस पर भी यदि कोई मनुष्य किसी बस्ती में रहता हुआ स्थान-स्थान पर थूकता, पेशाब करता अथवा अन्य प्रकार से गन्दगी फैलाता है तो वह अपने से अतिरिक्त व्यक्तियों को भी हानि पहुँचाता है।

धी: के अर्थ हैं बुद्धि का विकास और प्रयोग करना। मनुष्य की अन्य प्राणियों से विशेषता बुद्धि के कारण ही है। अत: इसके विकास और प्रयोग को धर्म का लक्षण माना गया है। इसका सम्बन्ध कर्ता के साथ होते हुए भी, विशेष परिस्थितियों में समाज के साथ भी हो सकता है।

यही बात विद्या की है। ज्ञान प्राप्त करना और इसका व्यवहार करना व्यक्ति के अपने करने की बात है। यद्यपि विशेष परिस्थितियों में इसका प्रयोग और प्रभाव समाज पर भी होता है।

वास्तव में ये व्यक्तिगत धर्म ऐसे हैं जिनके पालन में मनुष्य को किसी दूसरे से सम्पर्क अथवा सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती। ये सब-के-सब मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार एवं आवश्यकतानुसार स्वयं ही पालन कर सकता है। इसके विषय में कोई राज्य, संसद अथवा विधान सभा नियमोपनियम (कानून) नहीं बना सकती।

इसके विपरीत दूसरे पाँच धर्म, क्षमा, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, सत्य तथा अक्रोध ऐसे हैं जिनका पालन तो होता ही तब है जब कोई दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति सामने उपस्थित हो। इसी कारण इनको सामाजिक धर्म कहते हैं।

कोई भी व्यक्ति क्षमा तो किसी दूसरे को ही करेगा। इसी प्रकार, चोरी न करना तब ही हो सकता है जब किसी दूसरे की कोई वस्तु सम्मुख रखी होगी। इन्द्रिय-निग्रह, सत्य-भाषण और क्रोध न करना, ये सब तब ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं, जब कोई दूसरा व्यक्ति सामने उपस्थित हो। अत: ये सामाजिक धर्म हैं।

इन धर्मों के विषय में राज्य दण्ड-विधान बनाता है। इस दण्ड का विधान भी तो केवल इस निमित्त होता है कि इसके पालन न करनेवाले को दण्ड दिया जाए। यह तो हम ऊपर बता चुके हैं कि इनके पालन का विरोध तथा इनके पालन करने में बाधा तथा विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न करना तो होना ही नहीं चाहिए। परन्तु इनके पालन करने में विधि-विधान नहीं बनाए जा सकते। धर्म तो स्वयं पालन करने के लिए ही है। इस पर भी इसके पालन न करनेवाले के लिए दण्ड का विधान होता है।

यह इस प्रकार है। पुलिस अथवा राज्य किसी अपराध की ओर ध्यान नहीं दे सकता, जब तक वह अपराध न किया जाए। चोरी होने पर ही चोर को पकड़कर उस पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि धर्म का पालन तो कर्ता को स्वयं स्वेच्छा से करना चाहिए। ज्योंही किसी ने किसी धर्म के उल्लंघन का विचार भी मन में किया, वह धर्म का हनन करनेवाला हो गया। उस विचारमात्र से ही अधर्माचरण हो गया, परन्तु राज्य इसको न तो प्रज्ञेय (Cognizable offence) मान सकता है न ही इसको न्याय का विषय मानता है। वह न्याय का विषय तब बनता है, जब अपराध सम्पन्न हो जाता है।

वास्तव में कानून (दण्ड विधान) कर्ता को धार्मिक बनाने के हेतु नहीं बनाये जाते। यह तो अधर्माचरण से दूसरों को होनेवाली हानि से बचाने के लिए हैं। कर्ता के मन में धर्म के उल्लंघन का विचार आते ही अधर्माचरण हो गया माना जाता है। अधर्म का फल तब ही भोगना होना आरम्भ हो जाता है। हाँ, राज्य इसको विचाराधीन तब लाता है, जब धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उल्लंघन होता है।

अधर्म जो अभी केवल चिन्तन का विषय है और जो अभी सम्पन्न नहीं हुआ, इसका फल कब और कैसे होता है, इस पुस्तक का विषय न होने से हम छोड़ रहे हैं। इस पर भी परमात्मा और आत्मा को माननेवाला इस पर विश्वास रखता है।

संक्षेप में धर्म दो प्रकार के हैं, स्थायी और अस्थायी। अस्थायी धर्म देश, काल, आयु व अवस्था के अनुसार बनाए एवं हटाए जा सकते हैं, परन्तु वे कभी भी स्थायी धर्मों का विरोध नहीं कर सकते, न ही विरोध के अनुकूल परिस्थितियाँ निर्माण करनेवाले हो सकते हैं।

स्थायी धर्म भी दो प्रकार के हैं। व्यक्तिगत धर्म, धृति, दम, शौच, धी: तथा विद्या। इनके विषय में राज्य दण्ड-विधान में किसी प्रकार का प्रबंध नहीं कर सकता। सामाजिक हैं क्षमा, अस्तेय, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य तथा अक्रोध। इनके विषय में दण्ड-विधान बनाया जाता है। इसमें भी जब तक उल्लंघन चिन्तन का विषय रहता है, दण्ड-विधान कुछ अधिक सहायक नहीं होता। दण्ड-विधान तब ही कार्य करता है जब धर्म का उल्लंघन हो जाता है। वास्तव में दण्ड-विधान अधर्माचरण से दूसरों को पहुँचनेवाली हानि को रोकने के लिए है।

आजकल कुछ निरोधक (Preventive) कानून बनाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में, पुलिस ऐक्ट में यह प्रबंध है कि किसी व्यक्ति को संदेहात्मक स्थिति में घूमते देख पुलिस पकड़कर कारागृह (हवालात) में रख सकती है। यह भी समाज के भले लोगों की रक्षा के निमित्त ही है। इसमें न्याय की माँग रहती है कि पकड़े व्यक्ति को जाँच के उपरांत शीघ्रातिशीघ्र छोड़ने का प्रबन्ध हो। व्यक्ति दण्डनीय तब ही होता है जब वह अधर्माचरण कर लेता है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नटराज किशोर साहित्य पुस्तक माला के अन्तर्गत

प्रकाशित पुस्तकें

जीवनियाँ

स्वामी विवेकानन्द	*शिवकुमार गोयल*
हरिसिंह नलवा	*अशोक कौशिक*
महर्षि दयानन्द	*गुरुदत्त*
हिटलर की कहानी	*गुरुदत्त*
श्री कृष्ण	*गुरुदत्त*

ज्ञान-विज्ञान

जगत् की रचना	*गुरुदत्त*

कथाएँ

बोध कथाएँ	*अशोक कौशिक*
पाण्डवप्रिया पाञ्चाली	*सचदेव*
सदाचार की कथाएँ	*योगेन्द्र दत्त*
देवयानी तथा अन्य कथाएँ	*योगेन्द्र दत्त*
मानवता की कथाएँ	*योगेन्द्र दत्त*
पौराणिक कथाएँ	*योगेन्द्र दत्त*

कुछ अन्य किशोरोपयोगी पुस्तकें

वीर सावरकर		गुरुदत्त	
हिन्दुत्व	30.00	श्री राम	25.00
हिन्दुत्व के पंच प्राण	30.00	महाभारत	20.00
गोमान्तक	30.00	वीर हकीकत राय	25.00
मोपला	30.00	मैं हिन्दू हूँ	20.00
प्रतिशोध (नाटक)	25.00		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-M आगत संख्या 167959

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Gurukul
Date
Access No.
Class No.
Cat No
Tag e.:
Recomm. by.
Data Ent. by
Checked

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सदी में महर्षि दयानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर कई दिग्गज विद्वानों ने वेदान्वेषण को अपना जीवन समर्पित कर दिया था। पं० सातवलेकर, पं० विश्वबन्धु के नाम सर्वोपरि हैं परन्तु श्री गुरुदत्त जी की विशेषता है सरल भाषा में विवेचना।

श्री गुरुदत्त जी विज्ञान के विद्यार्थी होने से विश्लेषणात्मक बुद्धि रखते थे। इस पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने वेदाध्ययन आरम्भ किया तो पाया वेदों में सृष्टि-रचना का इतिहास है तथा साथ ही अध्यात्म एवं जीवन-यापन सम्बन्धी ज्ञान भी भरा पड़ा है।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रहाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 23553624, फैक्स : 91-11-5412417
E-mail : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar